विचार शक्ति अथवा मनोविज्ञान

विचार तथा कर्म का परिणाम

हम जहां जाते हैं वहां ही मनुष्यों को कहते हुये सुनते हैं कि हाय ! हमको तो हानि हुई ! हमारा किसी ने भी मान न किया। खेद है हमारा सब किया कराया अकारथ गया और हमारा रोना-धोना कुछ काम न आया। इस प्रकार का कहना अधिकतर मनुष्यों का स्वभाव बन गया है। वह आदि से लेकर अन्त तक यहीं दुखड़ा रोते रहते हैं। उनके जीवन में कठिनता से ऐसा समय आता होगा जब वह असफलता, अपमानता, हानि और अपनी असन्तुष्टता का दुखड़ा न सुनाते रहते हों। पर यदि विचार किया जाय तो वास्तव में संसार उनकी सेवा का बदला बड़ी उदारता और बड़े विशालरूप से दे रहा है।

स्वस्थ हों या धनी, संसार के कोष से चाहे कितने ही रत्न प्राप्त हुये हों, सम्मान, ख्याति प्रतिष्ठा सब कुछ प्राप्त हो जाय, पर यह झींकना स्वाभाविक है। कोई कहता है उन सगे सम्बन्धियों के साथ हजार गुण किये जांय पर यह अहसान नहीं मानते परन्तु सार यह है कि अच्छी से अच्छी चीज जो तुम दुनिया को दे रहे हो, संसार उसी उदारता और उससे भी अधिक तुमको बदला दे रहा है। पर इस भेद के समझने वाले, इस बात को जानने वाले और इस भेद से शिक्षा लेने वाले

बहुत कम हैं और सब उसी दुख का राग अलापते हुये उसी एक धुन में लगे रहते हैं।

हम में से अधिक मनुष्यों ने अपना सारा जीवन किसी न किसी सुकर्म में अर्पण कर रक्खा है। वास्तव में हर दृष्टि से उनको इसका फल मिल चुका है। उनको उनकी योग्यता के अनुकूल उपहार मिल चुका है। उनका सम्मान होने लगा। उनकी बात का आदर होने लगा। उनकी बात का आदर किया जाता है। उनकी कीर्ति बढ़ गई। यह सब कुछ है. परन्तु वह समझते हैं कि उनका किया कराया निष्फल गया। इनकी तपस्या का फल नहीं मिला। उनकी महनत की यथोचित सराहना नहीं की गई। इसी प्रकार वह रोते-झींकते किसी ऐसी मनोकामना के ध्यान में, जिसको वह खुद नहीं समझते, दुखी रहते हुये ठोकरें खाते हैं और संकट और आपदाओं के थपेड़ों से उनका मुख लाल हो जाता है। अपने जीवन के कार्य को असफल जान कर वह एक दिन खाट पर पड़ जाते हैं और मर जाते हैं और मरते समय भी कहते हैं दुनियां ने इनके साथ यथा योग्य और अच्छा व्यवहार नहीं किया। उनकी कृत्य-कार्यता और उनके परिश्रम का बदला नहीं मिला। अपने विचार में तो उन्होंने अपना सर्वस्व लुटा दिया, परन्तु उनकी दृष्टि में उनको क्या मिला? मनुष्यों की एक श्रेणी यह है।

इसके अतिरिक्त एक दूसरी श्रेणी भी है। उनका जीवन दुख और हानि से रहित है। जो कुछ वह चाहते हैं उसी समय हाजिर है। केवल हाथ लगाने की देर है कि मिट्टी उनके छूते ही सोना बन जाती है। प्रकट रूप में वह परिश्रम कम करते हैं परन्तु मनोकामनायें पूरी हो जाती हैं। वे उदासीन हैं। न वह दान देते हैं न किसी की मदद करते हैं। सुख-चैन के सिवाय और कोई विचार उनके पास नहीं फटकता। हर स्थान पर

उनके मनोरंजन के सामान मौजूद हैं। उनको निरंतर आवश्यकताओं की सामग्री मिलती रहती है। यह भी एक दिन खाट पर लेट रहे और आंखें मूंद लीं। पर दोष देने का एक शब्द भी बाणी से न निकला। न इस समय की चिन्ता न आगे की। जो समय बीत गया बीत गया। न इनको किसी ने सताया, न उनकी कोई कामना ही थी। न किसी को कुछ दिया, न किसी का भय किया। मिट्टी में मिलने को तैयार ! जहां से आये वहां को लौट गये।

"खाक से पैदा हुये और खाक ही में मिल रहे"

लाली मेरे लाल की, जित देखूं जित लाल।
लाली देखन मैं चली, मैं भी हो गई लाल॥
हिम से पानी होगया, पानी भी हुआ भाप।
जो पहले था सो भया, प्रगटा आप ही आप॥
पूरे सों परिचय भया, दुख सुख मैला दूर।
जम सों फांसी कट गई, साईं मिला हजूर॥
कबीर जब हम गावते, तब जाना गुरु नाहिं।
अब गुरु दिल में देखते, गावन को कछु नांहि॥
जा बन सिंह न बीचरे, पक्षी उड़ नहीं जाय।
रैन दिवस की गम नहीं, रहा कबीर समाय॥

और देखो संसार उनका किस प्रकार बराबर मान व सत्कार करता रहा। मरने के बाद उनकी पुण्य स्मृतियाँ स्थापित की गईं और उनको अमर बनाने का यत्न किया गया।

उनके सिवाय एक तीसरी श्रेणी भी है। जो लेने और देने के नियम बद्ध है। उनके जीवन को प्रेम व प्यार की सेवा ने सुन्दर बना रक्खा है। वह सब को प्रेम करते हैं। लोग उनके भी प्रेम व आदर का सम्मान करते हैं। वह भी जीवन व्यतीत करते हैं और इस बात को भले प्रकार जानते हैं कि दुनिया के

साथ उदारता प्रेम का व्यवहार किया। संसार ने भी वैसी ही उदारता से उनका एहसान माना। वह भी इसको अपने चित्त में मानते हुए अन्त में अपने निज रूप से जा मिले जो सामान्य चेतन्य है और जहां लेने देने के व्यवहार का अभाव है।

कर्म का फल

अब प्रश्न यह है कि इनमें भिन्नता क्यों है? इस बदला देने का भेद क्या है? क्या यह सच्चे हैं कि विश्व में परिश्रम का फल व स्वाद नहीं मिलता? क्या यथार्थ में कभी हमको बोते समय फसल काटने की आशा नहीं रहती? क्या हानि जीवन की साथी है? और क्या यह सम्भव है कि जीवन में ऐसे चरित्र दृष्टि गोचर हों? उत्तर मिलता है नहीं।

कर्म प्रधान विश्व रच राखा। जो जस कीन सो तस फल चाखा।
—तुलसीदास

करनी करे तो क्यों डरे, क्यों पाछे पछिताय।
बोये पेड़ बबूल के, आम कहां से खाय॥

ऐसा कभी हो ही नहीं सकता! यह अटल नियम है। जिस चीज से तुम सम्बन्ध रखते हो उससे कुछ न कुछ ले मरते हो। और रचना का सर्व व्यापक अटल नियम कभी इसका उल्लंघन नहीं करता, जिसके फलस्वरूप वह अपनी उदारता और दया का दृश्य न दिखाता हो। सूर्य पृथ्वी से तरी का कर (Tax) लेता है और वर्षा ऋतु में कैसी उदारता से मेघ की झड़ी लगाता है। लेना और देना दोनों साथ-साथ चलते हैं। और देने के अन्तर उसके प्रत्युत्तर (वापसी) के नियम का भेद सर्व व्यापक रूप में छिपा हुआ रहता है, जिसका ज्ञान हर व्यक्ति के लिए आवश्यक है, जिससे उसमें शांति और सन्तोष आवे।

कोई करनी निष्फल नहीं होती। करनी के निष्फल होने का विचार एक भ्रम है। हर 'दान' के साथ उसका फल मिलता है। और यह फल उस 'दान' का परिणाम है जिसको हम निष्फल हुआ जान लेते हैं लेकिन वह हमारे जीवन में एक विशेष रूप में प्रेगट होता है।

कभी न समझो कि 'कर्म निष्फल जाता है।' कहा गया है "जैसा करोगे वैसा पाओगे।" "उस हाथ दो इस हाथ लो।" "कर्म प्रधान विश्व कर राखा।" जो जैसा बोता है, वैसा काटता है।

फल की कुंजी हमारे जीवन के साथ गुथी व बंधी हुई रहती है। जिस विषय से हमारा जिस हद तक सम्बन्ध रहता है हम उसको उसी हद तक पा लेते हैं और हमारा जीवन इस फल की प्राप्ति के प्रगट होने का एक विचित्र प्रतिबिम्ब है, जिससे हमने जानबूझ कर या अनजान में सम्बन्ध जोड़ा था। स्वप्नावस्था की गति इस पर भले प्रकार से प्रकाश डालती है।

जो उच्च जीव अधिकारी हैं वह ख्याति और प्रतिफल से बंचित नहीं रह सकते। सम्भव है यह फल उसी समय मिल जाय और वह शक्तियां जो गुप्त रूप में हमारी लगन को जारी रखने में अंग संग रहती हैं उसको प्रगट करने में भी सहायक हो जांय। यह भी सम्भव है कि इस फल की प्राप्ति में हमको हजारों जन्म का इन्तजार करना पड़े। नियम मौजूद है। वह समय पर अपना फल देने का प्रबन्ध करता है और जो प्राणी इस नियम को समझते हैं वह हमारे भाव को समझने में भूल न करेंगे।

जो कुछ हमको मिला है अथवा नहीं मिला है वह उस विशेषता और अपेक्षा का पूर्ण चित्र है, जिस सम्बन्ध विशेषता

और अनुपात के साथ हमने ब्रह्मांडी मन व ब्रह्मांडी चैतन्यता से नाता जोड़ रक्खा है। जब कभी प्राणी रोटियों को जल में बखेरता हुआ जाता है वह कुछ दिनों बाद उनको अपने घर पावेगा, जिसको भूल से जन साधारण 'हानि' कहते हैं। वह एक नियम है जो जीवन की गढ़त और पूर्ण बनाने में एक विशेष भाग लिया करता है। जिस प्रकार तुम्हारा पिंडी मन है वैसे ही एक ब्रह्मांडी मन भी है। हर प्राणी ने उससे पिछले जन्म में प्रतिज्ञा कर रक्खी है जिसकी वर्तमान व आगे के जन्मों में पूर्ति होती रहती है। कभी सम्भव नहीं है कि उसके नियम में भूल या कमी हो। वह एक ऐसा न्यायकारी है कि जिसका फैसला अंतिम होता है और जिस प्राणी को तुम बिना फल पाए हुए जान रहे हो या बिना श्रम के भोग भोगते देख रहे हो, यह सब उसी नियम के आधार पर है। जल्दी या देर से यह अटल निर्णय अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकता।

जो प्राणी अथवा जीव किसी प्रकार के विशेष विचार का भूतकाल में प्रण कर लेता है, जो उसका स्वाभाविक गुण बन जाता है, वह उनसे सम्बन्ध रखने वाली वृत्तियों को शनैः शनैः उत्पन्न व एकत्र करने की धुन में लग जाता है। जिस समय काम शुरू होता है उस समय इन सम्बन्धित वृत्तियों का पता तक नहीं रहता। धीरे-धीरे वे खुद खिंची चली आती हैं। जैसे यदि किसी में प्रेम पैदा हो गया वह धीरे-धीरे सचाई, ईमानदारी, बुद्धिमानी और सब आत्म उन्नति करने वाले भावों का भंडार बनता जायगा। इत्यादि-इत्यादि।

हम किसी वस्तु की कमी अनुभव करते हैं। किसी बात की हमको आवश्यकता रहती है और हम बिना जाने उस इच्छा के क्रम या सिलसिले में वर्षों व्यस्त रहते हैं और शनैः-शनैः इस रचना में उसके लिए हम एक स्थान बनाया करते हैं। कुछ

समय पश्चात् जब हमारी उस इच्छा में निर्बलता आ जाती है, उसकी फल प्राप्ति में देर हो जाती है। हमारा उत्साह धीमा और हमारा मन निराश हो बैठ जाता है। पर यह संसार या रचनात्मक क्रम उसको नहीं भूलता। वह एक स्थान में पड़ी रहती है और ऐसे समय में विचित्र ढंग से प्रगट हो जाती है जिसका हमको लेश-मात्र भी अनुमान नहीं होता। कभी-कभी ऐसा होता है कि हमको उस इच्छा के फल मिल जाने से हमारा जीवन ही कष्टमय हो जाता है। उससे अलग होना चाहते हैं पर याद रक्खो प्रकृति तुम्हारे भाव, विचार, अनुभव, तुम्हारे मन, वचन और कर्म सब का चित्र गुप्त रूप से खींचती रहती है और जिसकी तुमने आदि में इच्छा की थी वह अन्त में मिलकर रहती है। तुम हजार कहो हम नहीं चाहते, पर वह तुम्हारे माथे मढ़ी जायगी; क्योंकि भाग्य का लिखा अमिट है।

तुलसी जो होतव्यता, तैसी मिले सहाय।
आपु न आवे ताहि पै,ताहि तहां ले जाय॥

शीशा सांचे में ढल गया। ताने बाने के तार बिछ गए और अब जीवन के सम्बन्ध उसी के अनुक्रम से निकलेंगे।

जिस वस्तु की प्राणी को आरम्भ में लालसा होती है उसके लिये वह हित चित से काम में लग जाता है। अथवा यों कहो उसके लिये वह प्राणी विशेष रूप से यत्न करने में,उसकी प्राप्ति के साधन में लग जाता है, अथवा उसके लिये उसका जीवन ही अर्पण हो जाता है और फिर उन वस्तुओं के साथ उसका सम्बन्ध जुड़ जाता है जो उससे सम्बन्धित होने वाली है। जैसे किसी को कारीगर या चित्रकार बनने की अभिलाषा है तो वह वैसी ही संगति ग्रहण करेगा। उसी प्रकार की शिक्षा का अधिकार प्राप्त करता जायगा। यहाँ भी वह ही अटल नियम

काम करता है। आदि में विशेषता का संस्कार है। फिर पंथ का चलना शुरू होता है। जाने या अनजाने कठिनाइयाँ, निराशायें, मेहनत. स्वाध्याय, सत्संग, भले बुरे कर्म, मान प्रतिष्ठा की लालसा आदि कामनाओं के बीच होकर पथिक को गुजरना होता है, तब जाकर फल के भोगने का अवसर निकल आता है। कभी कभी हमारी सेवायें अन्त होते होते नये और विशेष सेवाओं के रूप में नया जन्म धारण कर लेती हैं। फिर हम और पथ पर पग धरते हैं।

जिस प्राणी ने इन सब बातों को अच्छी तरह समझ लिया है वह इष्ट सिद्धि के लिये हित चित से काम लेता है। इसकी आँखों के सामने मन और इन्द्रियों के अन्तरी परदों के भीतर दिव्य द्रश्य दिखाई देते हैं। सैकड़ों वर्ष, युग युगान्तर सब में वह दृष्टा बन कर दृढ़ता पूर्वक अपने पग को जमाये रखता है और हर हानि को अपनी अपूर्णता का परिणाम समझ कर काम करता जाता है। काम से नहीं उकताता और काम के करने ही में उसको खुशी का फल भोगने को मिल जाता है।

इस से प्रथम कि हम फल भोगने के सर्वव्यापक अटल नियम को समझें हमको जान लेना चाहिये कि हम संसार से किसी ऐसी वस्तु की आशा नहीं करते जिसका बदला हम चुका नहीं सकते। खोज कर ऐसा मार्ग तलाश करना या किसी काम को हाथ में लेना पहला काम है। दूसरा कर्म मार्ग या पंथ पर चलना है, जो हमको पंथाई का नाम प्रदान करेगा। यदि हमारे मन को दुख होता है और हमारे पग लड़खड़ाते हैं तो जान लेना चाहिए कि पंथाई बनने में जीवन के पवित्र, पुनीत और श्रेष्टतम सम्बन्ध जोड़ने में हमारी अपनी कायरता और कुबुद्धि पथभ्रष्ट कर रही है। प्राणी जो चाहता है उसको वह वस्तु प्राप्त हो जाती है परन्तु हर वस्तु का मोल चुकाना पड़ता है।

तपस्या करनी पड़ती है उस इष्ट सिद्धि के उस अमूल्य रत्न का मोल यह ही मानुषी परिश्रम, चिन्ता,सोच, व्याकुलता विषाद आदि हैं जिनको वह भूल और भ्रम से यह समझता है कि हमको अपने किये का फल नहीं मिला। मनुष्य की बुद्धि पूर्ण नहीं हैं, संकुचित हैं। वह सीमित घेरे से आगे नहीं बढ़ती इसी कारण ऐसे शब्द वाणी से निकालती रहती है।

याद रक्खो। रचना में 'नहीं, अथवा "असम्भव" की सम्भावना ही नहीं है। सारी कमी हम में है।

साहब के दरबार में, कमी वस्तु की नांहि।
बन्दा मौज न पावहीं, चूक चाकरी मांहि॥

जिस वस्तु को हम चाहते हैं उससे अपनी आत्मा को जोड़ देते हैं। इसकी कहने की आवश्यकता नहीं कि हम क्या चाहते हैं। और यदि हम आत्मा को उस सफलता या इष्ट सिद्धि से जोड़ने का भेद जानते हैं और उसका मोल चुकाने का साहस रखते हैं तो वह मिल जायगी। इस मोल चुकाने का हाल और कोई नहीं जानता। यह केवल उसी को मालूम है जो मोल चुकाता है, क्योंकि वह उस इष्ट सिद्धि की गहराई में निरन्तर और गुप्त रूप में वास करता है।

चोट सतावे विरह की, सब तन जर-जर होय।
मारन हारा जानिये, के जस लागी होय।
हिरदे भीतर दौं जले, धुंआ न प्रगट होय।
जाके लागी सो लखै, या जिन लाई सोय।

कई वर्ष बीते मैंने एक व्यक्ति को देखा जो 'ज्ञान'का विशेष रूप से अधिकारी था। ज्ञान का इच्छुक था। ज्ञान उसके जीवन का ध्येय बन गया था। सोते जागते वह इसी धुन में लगा रहता था। उसकी लालसा बुद्धि के लिए नहीं बल्कि सार ज्ञान के लिए थी। उसने रचनात्मक जीवन के सब गुप्त रहस्यों से अपने आप

को जोड़ लिया। वर्षों बीत गए किसी हद तक उसने उन्नति कर ली और उसको वह अनमोल मोती मिल गया, परन्तु उसके साथ ही और भी कितनी वस्तुयें उसके हाथ आईं, जिनकी इच्छा की आदि में सम्भावना भी नहीं थी। उसको प्रतीत हुआ कि उसको इस जिज्ञासा की खोज की अवस्था में कठिन से कठिन गहराई में डुबकी लगानी पड़ी और कभी-कभी उसको मानुषी अनुभव के आधीन काल से भेंटा होने का अवसर मिला। दुख, संकट,दीनता,निराशा,बेबसी सबके आधीन होना पड़ा। कठनाइयां सहन करनी पड़ीं। सबके साथ खुश होकर हाथ मिलाना पड़ा। तब कहीं अकेले जाकर आधी रात के समय बर्फ व पाले की सर्दी में अपने ध्येय, व मनोरथ के किनारे पहुँचने का अवसर आया। वह ज्ञान का ऐसा इच्छुक था जैसे बालक चांद के लिये रोता है। और उस तक पहुँचने के लिए उछलता कूदता है। वह नहीं जानता था कौन से आत्मिक रास्ते हैं जिनसे गुजरना पड़ता है। न उन दुर्गम स्थानों का भेद ही जानता था।

घट में है सूझे नहीं, कर सों गहा न जाय।
मिला रहे और ना मिले,तासों कहा बसाय।
भेदी लिया साथ कर, दीना पंथ लखाय।
कोट जन्म का पंथ था, पल में पहुँचा जाय।

जो किनारे पर पहुँच गए हैं उनकी हालत से इन अंधेरे में टटोलने वालों का मुकाबला ही क्या ! कहा है :—

रात अंधेरी थी मौज और तूफां भी उठते थे।
कोई पूछने वाला न था हाल मुझ बेहाल का।

मैं एक ऐसे व्यक्ति को भी जानता हूँ जो प्रेम, दया, और कृतज्ञता के बीज वर्षों तक अनेक व्यक्तियों के हृदयों के खेत में बोते रहे और लगभग उनका सारा जीवन इसी काम में व्यतीत हुआ और अन्त समय में उनको मान, प्रतिष्ठा, नेकनामी,

हैसियत इत्यादि सबसे हाथ धोने पड़े। वह भी ऐसे व्यक्ति के हाथ से जिसको वह सबसे अधिक प्यार करते थे। क्या अच्छा फल मिला ! जो लोग इस भेद को नहीं जानते उनको इसमें सार तत्व का ज्ञान न लख पड़ेगा। पर वास्तव में सार यह है कि वह मिले जुले कर्मों के बीज बोता रहा। ब्रह्मांडी मन इसको खूब जानता था। जब उसकी फसल काटने का समय आया, एक व्यक्ति ने ही उसके सामने फसल काट कर रख दी। याद रक्खो संसार में तुम्हारे मन, कर्म, वचन और भावों की हर समय रजिस्ट्री होती रहती है और जिस यंत्र से तुम औरों के लिए नापते हो उसी से तुम्हारे लिए मापा जायगा। मान प्रतिष्ठा के चाहने वालो ! सदाव्रत के जारी करने वालो ! इसको अच्छी तरह चित में बसालो ! नाम की इच्छा से दान देने वालो ! इससे शिक्षा लो ! बाहरी आंखों से देखने में चाहे धोखा हो जाय पर वह जो सर्व व्यापक है, हमारे तुम्हारे सबके नस नाड़ियों में बसा हुआ है उसको हर बात की खबर है। उसकी आंखों में तुम धूल नहीं डाल सकते।

परन्तु अब सवाल यह है कि "क्या वह प्रेम प्यार की सेवा के वर्ष व्यर्थ ही गए ?" नहीं उनकी भी रजिस्ट्री ब्रह्मांडी मन के दफ्तर में होती रही और उसके भंडार से किसी अन्य स्थान पर इसका बदला मिला। कुछ वर्ष पश्चात् एक अनजान पुरुष ने उसके प्रेम का बदला चुकाया। अपनी शिक्षा दीक्षा और सच्ची भक्ति का उदाहरण दिखाकर उसको शांति, प्रेम और द्रव्य का बदला चुका दिया। इसको पूरा बदला मिल गया और उसका जीवन दिखावे से घृणा करके फिर सावधानी से व्यतीत हुआ।

बदला या फल हमारे हाथ की पहुँच के निकट है। केवल समझने और जानने की देर है। मनुष्य अपनी उदासीनता 'वैराग' के स्वभाव से इसको छोटा, तुच्छ और सीमाबद्ध बनाते

रहते हैं। और अधिक अपनी सेवा का फल मांगने के इच्छुक रहते हैं। हममें से अधिकांश उन बालकों के समान हैं जो रबड़ की गेंद को फूंक से फुलाकर ऊपर की ओर उछालते हैं और वह उसी धागे के सहारे उनकी ओर आ जाती है। इस तरह कर्मों के फल कम होते हैं। प्रकृति के सर्व व्यापक नियम में कर्म के फल देने के धागे भिन्न हुआ करते हैं। जिसको तुम नष्ट हुआ समझते हो वह किसी और रूप में तुम्हारे पास पहुँचेगा। कहावत है:—जो जीवन को खो देता है जीवन उसको मिलता है।''यह सचाई उन लोगों के लिए है जिनमें इसके समझने का संस्कार है। और हम थोड़ा संतोष करते हुए इस जीवन को पहले की अपेक्षा अधिक पूर्ण और ऊपर के लोकों में पहुँचने के योग्य बना लेते हैं। और वह हमारा अपना बन जाता है।

जो तू प्यासा प्रेम का, शीश काट कर गोय।[1]
जब तू ऐसा करेगा, तब कुछ होय तो होय।
हंस-हंस कन्थ न पाईयां, जिन पाया तिन रोय।
हंसत खेलत जो पिउ मिलें,तो कौन दुहागिन होय।
सिर राखे सिर जात है, सिर काटे सर[2] होय।
जैसे बाती दीप की, कट उजियारी होय।

संसार में कर्म का फल हर समय और सदा मिला करता है। हम जो मांगते हैं हमको दिया जाता है। और जो भूल से हानि की शिकायत करते रहते हैं वह केवल मनुष्य की दृष्टि से इसको देखते हैं। इन लोगों ने समय या काल को एक परिमित चक्र मान रक्खा है।

कर्मफल एक दिन,एक घन्टा या एक जन्म की वस्तु नहीं है। एक पल की सेवा से क्या आशा रखते हो ? बल और प्रेम जन्म भर अभ्यास करने से आते हैं। हम केवल इस कारण कर्मफल न

(१) कह (२) विजय

पाने का दुख रोते हैं क्योंकि हमने कर्मफल भोगने के सर्वव्यापक नियम की उदारता को भले प्रकार नहीं समझा। जिन लोगों को तुम कर्म के फल न मिलने से बंचित समझते हो वह वास्तव में ऐसे नहीं हैं। इस रचना की व्यवस्था में कहीं भी ऐसी त्रुटि नहीं है। उसका मिथ्या अर्थ न लगाओ। यह तुम्हारी अपनी भूल और भ्रम का कारण है। हम जो बोते हैं, किसी समय अवश्य काटेंगे और ठीक समय से पहले या पीछे कभी भी हम फसल को नहीं काट सकते।

जो जीवन सेवा भाव में व्यतीत होता है सेवा का फल भोगता है। जो प्रेम में बिताता है वह प्रेम का भागी होता है। जो कमजोरी बोते हैं वह कमजोरी ही काटते हैं। देखो! खेतों को तो जरा। जैसा बोया था उसको वैसा मिला।

यह है तिल, यह है गेहूँ, यह है मूंग, यह है राई, यह है जौ, यह है खशखाश। यह सचाई है। इससे किसी को छुटकारा नहीं है। सोचो समझो। तुम्हारे कर्म तुम्हारे पास लौट कर आवेंगे क्योंकि क्षोभ (हिलोर) सदा गोलाकार हुआ करता है। सम्भव है वह अनोखे ढंग में हो।

कर्म फल के भोग का नियम हमारे जीवन भर काम करता रहता है। जिस तरह नदी का बहाव सदा चलता रहता है ठीक वैसे ही इसकी भी धार जारी रहती है। हमको अपनी बुद्धि को इतनी सूक्ष्म और तीव्र बना लेनी चाहिऐ कि हम इनको पहिचान सकें कि यह हमारे ही हैं परन्तु हानि और अहंकार के गर्म आंसुओं से भरी आँखें अंधी बनी रहती हैं। हम इनको देख नहीं सकते। हम अपनी कामना के बीज, मोल का ध्यान किये ही बिना बोते हैं। परिणाम यह होता है कि दुख के पीले फूल हमारे चारों ओर फूलने लगते हैं। हमको आशा सफेद फूलों की रहती है। और जहाँ हमने इसकी सूरत देखी आश्चर्य से

मुख फेरने लगते हैं। हम नहीं जानते थे कि यह दुख और कष्ट इस सम्बन्ध का आवश्यक परिणाम है। हमको सोच लेना चाहिऐ "हर वस्तु अपने जिन्स ही को पैदा करती है।" जब जब हम राह पर चलते हैं यह ही नियम हमारे जीवन में अंग संग रहता है।

कुछ लोग कहते हैं हमको विद्या और धन दोनों नहीं मिल सकते। इस कारण हमने धन का विचार छोड़ दिया और विद्या के पीछे हो लिये। दूसरे कहते हैं कि एक ही नौकर दो स्वामियों की सेवा के जीवन को सर्वोपर माने। कितने अफसोस की बात है! वह विद्या ही क्या चीज है जो अपने क्रम में धन को नहीं खींच लाती या आत्मा की अन्य इच्छाओं की सामग्री को नहीं पैदा करती। वह सेवा ही क्या हुई जो इस बात के समझने में रुकावट डालती है कि सेवा करने से ही खुशी मिलती है।

जीवन ने जो कुछ बोया है वही दूसरे रूप में बदल कर वापिस आता है। और जब हम उसको समझ लेते हैं तब हम अपने आप को उससे नाता जोड़ने को तय्यार हो जाते हैं जो सर्व प्रकार से परिपूर्ण हैं और उस पूर्ण की ही आशा करते है। उस समय निसंकोच हमको लेष मात्र भी चिन्ता नहीं रहती कि हमको कैसा फल मिल रहा है।

फल की चिन्ता करना व्यर्थ है। कर्म पौधे की तरह पत्ते व डाली निकाल कर तब फल देता है।वृक्ष में एक दम ही फल नहीं आते। पहले अपने अंदर सोचो और समझो कि हमको किस वस्तु की इच्छा है और यह भी विश्वास करलो कि हमको पूरी सामर्थ्य के साथ उसकी कामना करनी है। फिर काम में लग जाओ। यह भी चिन्तन किया करो कि उसका मोल क्या है? इसके उपरान्त विचार करो कि इसके सिलसिले में कौन से

दृश्य कौन से हालात से हमको भेजा होगा। तब "मार्ग" पर चलते हुए मन और चित्त को सूक्ष्म बनाते हुए हम आगे को बढ़ते जायेंगे और कोई शक्ति हमारे दृढ़ व्रत को रोक न सकेगी और हमको ठीक-ठीक फल मिल जायगा।

जब हम उस परिपूर्ण और सर्व सम्पन्न से मिलने जांय हमको अपने आपको सीमित न रखना चाहिए। सर्व शक्तिमान पूर्ण की इच्छा करो। सर्व शक्तिमान पूर्ण से विनय करो और सर्व शक्तिमान पूर्ण की उपासना (पास बैठक) करो। जब हम ऐसा कर लेंगे शिकायत (दुख दर्द) का मुख आप बंद हो जायगा। फल इच्छानुसार मिल जायगा। मांगने से प्रथम ही मोल चुक जायगा और हम उस सर्वव्यापक तत्व से मिल कर एक हो जायेंगे जो सबकी जान और प्राण है। आगे चलकर न केवल फल की ही इच्छा रहेगी बल्कि हम "मार्ग" के अर्थ को सिद्ध कर लेंगे और इससे मिलकर एक हो जायेंगे जिसने हमको यहां भेजा था। उस समय किरण सूर्य में और बुंद सिंध में समा जायगी।

फल न मिलने का अवसर कहां है ? जो सत है चित है और आनन्द है वहां आनन्द की लहरें उठती हैं। संसार का रोना सदैव के लिए मिट जायगा। इस पूर्ण महा चैतन्य की उपासना (उप=पास। आसन=बैठना) से वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति होगी। उसमें जो सार तत्व है, सार जीवन है, मिलजायगा

तुम्हारी प्रार्थना का आरम्भ उस समय हुआ था जब तुमने प्रथम ही प्रार्थना की थी। अब यह उसका अन्त है। इस हितोपदेश के सुन लेने और समझलेने से तुम्हारा भला होगा।

और सुरत बिसरी सकल, लौ लागी रहे संग।
आव जाव कासे कहूँ, मन राता गुरु रंग।

जब लग कथनी हम कथी, दूर रहा जगदीश।
कहना सुनना सब गया, लौ लागी अब ईस।

(२) जीवन का राग

जीवन सुख है और मृत्यु दुःख हैं। जीवन के ख्याल में चेतन्यता, है, परिश्रम है, रुचि है और खुशी है। मौत के ख्याल में जड़ता है, अरुचि है, आलस्य है और रंज है। कौन व्यक्ति है जो मौत के मुख में जाने का इच्छुक होगा। फिर भी हम दुनिया में आत्महत्या की घटनायें सुनते हैं और जीवन के विरुद्ध हुल्लड़ मचा हुआ देखते हैं। फिर क्या यह सच है कि लोग मरने की इच्छा रखते हैं? नहीं, उनके मन में घुसकर देखो। वह मौत नहीं चाहते। केवल अपने असह्य जीवन में परिवर्तन चाहते हैं और इस परिवर्तन की आड़ में वह कामना काम करती है जो बौद्धों जैसी परम पुनीत और महान अस्तित्व की सूचक और निर्वाण की ओर ले जाने वाली है। वह भी जीवन है। जीवन फैलता है। मृत्य सुकड़ती है। जीवन एक चौड़ा मैदान है जहां सूर्य की चमकने वाली किरण खुशी से खेलती हुई एकत्व का राग गाती है। मृत्यु एक भयानक चिता है जिस पर बिना प्राण का मृतक शरीर जलता है और इसके अंग बिखर जाते हैं अथवा अंधेरी तंग कब्र है जहाँ प्रकाश का नाम नहीं। जीवन का ख्याल स्वर्ग है और मृत्यु का नर्क।

क्या तुम जीवित रहने के इच्छुक हो? जीओ, फूलो फलो, फैलाओ और फैलो जिससे कहीं तंगी, तंगदिली का पता तक न रहे। पक्षपात की जड़ कट जाय। हर वस्तु में उसका रूप चमकता नजर आवे जो सर्व व्यापक, सबका स्वामी और निज रूप है। ओह! वह मन! मन भी कैसा शक्तिशाली है जो अपने में उस सर्व व्यापक को भी प्रगट करने का साहस करता है। क्या

वास्तव में हमारा मन ऐसा ही है ? यदि नहीं तो किसका ध्यान ? किसका मनन ? किसका स्मरण ? धर्म वालो ! आओ इसी एक बात पर विचार करो। उसी समय तुम अपनी निज महिमा और महत्व को जानने योग्य बनोगे।

हम जीवित हैं, अनादि हैं, हमेशा से हैं और हमेशा रहेंगे। हम में ऐसा जीवन है जो मृत्यु और विनाश को नहीं जानता। और सुनो ! अर्जुन के पूज्य सखा और सार्थी कैसी जोरदार घोषणा कर रहे हैं। "कोई समय ऐसा नहीं था जब मैं न रहा हूँ या तू न रहा हो, या यह राजकुमार न रहे हों। न कोई ऐसा समय आवेगा जब हमारे अस्तित्व का अन्त होगा। शरीर का रहने वाला इसी शरीर में बल, जवानी और बुढ़ापे को भोगता है। फिर दूसरे शरीर में जाता है। इस आवागमन पर बुद्धिमान दुख नहीं मानते।"

"इन्द्रियों के सम्बन्ध से हे कुन्ति पुत्र ! गर्मी और सर्दी, रंज और खुशी जाते और आते हैं। यह नाशवान हैं। हे भारत ! इन को सह। हे मनुष्य श्रोमणि ! जिनको यह नहीं सताते, जो सुख दुख में समान रहते हैं, शांत हैं, केवल वे ही अमर हैं।"

जो "है" वह 'नहीं" नहीं हो सकता, जो "नहीं" है वह "है" नहीं हो सकता। तत्ववेत्ता ऋषियों ने उस के सार को देख लिया है।

"जो सर्वव्यापक है उसको तू अमर जान ! उस अविनाशी का कौन नाश कर सकता है ?"

"न वह कट सकता है, न जल सकता है, न गीला हो सकता है, न सूखा हो सकता है, वह अनादि, सर्वव्यापक, अमर और सनातन है।"

भगवद्गीता अध्याय २।

यह हमारी महिमा है किसी अन्य की नहीं। यदि हम में अमर पद का विचार है और अनादि होने का विश्वास हमारे हृदय में दृढ़ हो गया है तो आश्चर्य क्या है !

हम दुखी हैं, क्योंकि इन्द्रियों के बन्धन में अपने आप को डाल रक्खा है। केवल मन के स्थान पर कभी २ जाते हैं। यहाँ आत्मिक स्थान से नाता जोड़ने में आना-कानी करते हैं, जो सर्व-व्यापक है। जिसमें जिस कदर उच्च विचार होंगे, जिसका मन जितना उदार होगा, वह उतना ही सूक्ष्म बन कर अधिक शक्तिशाली होगा, अधिक फैलेगा और अधिक काल तक ठहरेगा। वर्फ़ का जमा टुकड़ा कठोर है। थोड़ी जगह में ज़ल्दी पिघल जायगा और जल बन कर वह अधिक फैलेगा और अधिक स्थान लेगा और देर तक रहेगा। इस पानी को थोड़ा भाप के रूप में बदलने दो। देखो वह नाइट्रोजन, हाइड्रोजन आदि गैस का रूप बन जायगा। ओहो ! क्या तमाशा है। वह आकाश मंडल में कैसा मंडलाता हुआ जाता है। इसमें कितनी शक्ति, सूक्ष्मता और कितनी देर तक ठहरने की शक्ति आ गई।

बर्फ़, पानी और गैस तीनों एक थे, एक हैं और एक रहेंगे। इनकी और भी सूरतें होती हैं। इनसे भी अधिक इनके सूक्ष्म रूप हैं जिनका ज्ञान सबको नहीं है। पर क्या कारण है कि इनमें भिन्नता हैं ? उत्तर मिलता है बन्धन की अवस्था, देशकाल और वस्तु के प्रभाव के प्रतिकूल और अनुकूल प्रभावों के सम्बन्ध। इन सब ने परिवर्तन कर दिये। यह परिवर्तन आज के नहीं हैं। सदाँ से हैं, सदाँ रहेंगे और सदाँ थे। यह इनका आवागमन है। यह इनके जन्म जन्मान्तर का क्रम है। ससुद्र से सूर्य की किरणें भाप को ऊपर खींचती हैं। वह बादल बन कर कैलाश पर वर्षा करते हैं। बरसा हुआ पानी बर्फ़ बनता है। बर्फ़ पिघल कर गंगा की उज्ज्वल लहरों में बदलता है। यह ही फिर चक्कर

खाता हुआ खेतों को हरा भरा और बागों को जल देता हुआ फिर समुद्र में जाकर मिल जाता है। और फिर वह वहाँ भाप बन कर हिमालय की चोटी पर बरसता है इत्यादि।

यह काल का चक्र है। इसमें दुख सुख क्या है? क्यों कोई घबराये? दुख न मानने का उपाय यह है कि क्यों न हम उस बड़े नियम से एक होकर उससे रचनात्मक क्रम के पूरा करने में लग जांय और सुख चैन से जीवन के सार भेद को समझते हुए इस चक्कर के हिंडोले में झूलते जाँय और संसार को गा गा कर सुनाते जाँय! एक फारसी की कविता का साराँश यह है—"हमारा मित्र गर्दन में डोरी डाले हुये जिधर चाहता है हमको अपनी मर्जी के अनुसार उधर ही ले जाता है।"

सब ही नाँच नचावें सांई।
उमा कीट मरकट की नांई। तुलसीदास

"और यदि तू यह समझता है कि बार-बार जन्म लेना बार-बार मरना होता है तो हे लम्बे भुजाओं वाले अर्जुन! तब भी तुझको शोक न करना चाहिये, क्योंकि जो पैदा होता है उसके लिये मरना जरूरी है। जो मर गया उसके लिये पैदा होना आवश्यक है। जो होना है उस पर तुझको शोक न करना चाहिये।"

आदि में यह कहां प्रकट थे! केवल बीच की अवस्था में यह प्रगट हुये। हे भारत! अंत में यह फिर वैसे हो जांयगे। फिर शोक करने की सम्भावना कहाँ है?

इसको कोई विचित्र जानता है। दूसरा उसको ऐसा बताता है। तीसरा उसको ऐसा सुनता है किन्तु सुनकर उसके सार को समझता नहीं। भग० गी०

हम संसार में आगये। किसी कारण से आये। यदि आप ही चले आये तो "अपनी करनी आप ही भरनी"। इसका क्या

इलाज ? यदि किसी दूसरे की इच्छा से आये तो हमको उस दूसरे की इच्छा के अनुसार रहना भी चाहिये।

लाया जीवन आये मृत्यु ले चली चले।
न अपनी खुशी से आये न अपनी खुशी चले॥

दोनों हालतों में शोक कैसा! पर खेद है कि कितने मनुष्य हैं जो अपनी वास्तविक दशा को जानते हैं। अनसमझी से, अज्ञान से, इनको व्यर्थ का दुख है। यह "मेरा है" यह "तेरा है" यह 'अपना है,' यह 'पराया है,' वास्तव में यह ही दुख के मूल कारण हैं।

कंकड़ चुन-चुन महल बनाया, लोग कहें घर मेरा।
ना घर मेरा ना घर तेरा, चिड़िया रैन बसेरा॥

कौन किसका है? यह सब मिथ्या और व्यर्थ का विचार है। इसको तोड़ दो जो तुमको बांध न सके।

मोर तोर की जेवरी, बट बांधा संसार।
दास कबीरा क्यों बँधे, जाके नाम अधार।

इस भाव को एक बार मन में बसा लो। फिर क्या है! न कहीं दुख न कहीं सुख! आनन्द की अवस्था है।

परन्तु क्या कहा जाय! माया की रचना विचित्र है! धर्मों पंथों को देखो! यह भी मेरा तेरा पना करते हुए किस तरह कलेजों पर छुरी चला रहे हैं। क्या इन सबका ईश्वर एक है? यदि एक है तो फिर यह झगड़ा किस बात का? लोग दांत पीसते हैं, घूंसे तानते हैं, लातें चलाते हैं। मालिक के नाम पर कैसा खून खराबा मचा हुआ है। यही अनेक जातियों की और धर्मावलम्बियों की दशा है! यह सब इतने तंगदिल और तंग ख्याल बन गए कि इनकी दृष्टि ऊंची नहीं जाती।

तुम जो थोड़ी ऊंची निगाह रखते हो तो इस गिरावट की दशा से ऊंचे जाओ। तुम जो आत्मिक भाव को थोड़ा भी

समझते हो तो मिथ्या पथ से बचो ! मौत की ओर मत जाओ ! आओ जीवन की ओर ! प्रकृति के घूमने वाले चक्र से मिलो। खुद चक्र काटने लग जाओ। चक्र के क्रम में सहयोग दो। 'मेरा' 'तेरा' पन का ख्याल छोड़ो।

अब तक तुम क्या कर रहे थे ! इन्द्रियों के बन्धन में बंधे विषयों का बीज बो रहे थे। हाय अफसोस ! तुम्हारी आत्मा के ऊपर कैसे मलीन, बुरे और अपवित्र कोष चढ़ गये ! अपने मुख के सामने दर्पण रक्खो। देखो वह क्या दिखाता है ? चहरे पर झुर्रियां हैं, आंखों में झांईं पड़ गईं। रूप क्या है मानो अफ्रीका का उजाड़ और भयानक मैदान है ! जहां न वृक्ष हैं न सरोवर हैं। लूं चलती है रेत उड़ता है। गर्म वायु के झोंके जल्लाद का काम करते हैं। तुम खुद अपने रूप की परछांई देखकर आंख चुराते हो। और यह क्यों ? तुमने खुश रहने, खुश बनने और खुश करने का न गुरु सीखा, न उसको अपनाया। एक ओर हजारों से ईर्ष्या, दूसरी और अन्य धर्म वालों से द्वेष, अपनों से बैर, परायों से विरोध, इन्द्रियों के वशीभूत ! "मुख में राम बगल में छुरी।" यह कारण है कि दर्पण तुम्हारे सामने रक्खा हुआ तुम्हारा मुंह चिड़ा रहा है। एक फार्सी के कवि का कैसा भाव है !

"हर दो लोकों का आराम इन दो शब्दों पर निर्धारित है। मित्रों पर कृपा, शत्रुओं से सद व्यवहार।"

तुम फोटो ग्राफर के समीप चित्र खिचाने को आ बैठे हो। कोशिश कर रहे हो। होठों पर हंसी, मुख पर चमक और चित्त प्रसन्न हो। पर यह दशा एक घड़ी के लिए कैसे आवे ! तुम दुनिया को धोखा दे सकते हो पर अपने मन को धोखा नहीं दे सकते। वह खूब जानता है कि वास्तव में क्या दशा है। समय-समय पर जताता भी रहता है। दिन के आठ पहर गालीगलोज

में बीतते हैं। झूंठ और धोखे का सौदा चलता है। धन के लोभ ने गरदन में ऐसी फांसी डाल रक्खी है कि अपने बाल बच्चों तक के प्रेम का अवसर नहीं मिलता। घर में स्त्री से हर समय कहन सुनन, पिता दुखी, माता नाराज, भाइयों को शिकायत, बहन व्याकुल। क्या इस दशा में फोटो ग्राफर तुम्हारे चहरे की हंसती खेलती तस्वीर खींच सकता है? स्वभाव का गहरा प्रभाव चहरे पर पड़ गया। असम्भव है कि कोई राक्षसी रूप का चित्र देवता के रूप में उतार सके। जो कुछ हुआ सो हुआ। अब भी संभल जाओ! हंसी खुशी से रहो। दूसरों को खुश रक्खो। यह सारी झुर्रियां बुढ़ापे में भी जाती रहेंगी। तुम कुछ दिन के अभ्यास से अपने स्वभाव को शिष्ठ सभ्य बनाकर कुछ के कुछ बन जाओगे और खुशी से अपनी इस बदली हुई दशा को धन्यवाद देने लगोगे जिसको तुम "मौत" कहा करते हो।

जीवन बढ़ने का नाम है। बढ़ना बिना परिश्रम या काम करने के नहीं आता। बीज के सिर पर मिट्टी का कितना बोझ लदा रहता है। वह देखो विचारो किस परिश्रम और संयम के साथ इस मिट्टी को कुदेरता हुआ बन्धन और पराधीनता की दशा से ऊपर की ओर खुली हवा में आता है। हिमालय की तराई और उपवन कैसा सुन्दर है! फूल खिले हैं। वृक्ष हरे भरे हैं। नदियों का जल कैसी सफाई के साथ बह रहा है कि देखने वाले आश्चर्य में रह जाते हैं! यह क्यों हैं? क्योंकि उस पर्वत में उनके कारण कितनी कंद्रायें और कितनी घाटी हैं और कितनी कठिनाईयां झेलनी पड़ी हैं। कोई अवस्था सहज और सुगम नहीं होती। सबके लिए चिन्ता करनी पड़ती है। जहां काम नहीं है वहां जीवन नहीं है। व्यर्थ के तर्क कुतर्क, स्वभावों में भिन्नता और संकीर्णता को छोड़ो। सिर के ऊपर हाथों को लाकर चमकते हुए तारों को पकड़ने की कोशिश करो। एक दिन वह

तुम्हारे हो जायेंगे।

जीवन काम के लिए है, सेवा के लिए है, भजन बन्दगी के लिए है। जीवन आलस्य के लिए नहीं। इन्द्रिय विषयों को नहीं, न व्यर्थ के सुख चैन मनाने को है। जीवन केवल बंदगी के लिए है। बिना बंदगी के जीवन लज्जाजनक है।

'जीवन के हजारों लाखों करोड़ों और अनन्त रूप हैं। कहीं वह वनास्पति के रूप में अठखेलियां खेल रहा है, कहीं कहीं वह पशुओं के रूप में प्रगट है। कहीं वह मनुष्य रूप में मनुष्य का चित्र दिखा रहा है। कहीं पहुंचे हुए महात्माओं के रूप में अपने चमत्कार को प्रगट कर रहा है। वायु चलती है। मेघ गरजते हैं। पृथ्वी और आकाश सब में उसकी धूम है।

न बिजली में चमक और न आग के शोलों में।
कोई बतावे वह पर्दानशीं कहां बैठा है ?

जीवन एक है, जो आलसी हैं अपाहिज हैं, कायर हैं, इनको जीवित न जानो, वे बेजान हैं। जैसे मृतक शरीर को प्रकृति की शक्तियां अपना काम करती हुई शीघ्र ही उसके अंगों को तितर-वितर करके निगाह से छिपा देती हैं, वही दशा आलसी देश, जाति और आलसी मनुष्य की होगी। इससे कोई बचा नहीं सकता। हे जीवित ईश्वर के पूजने वालो ! क्या आलस्य में पड़े हो ? यदि तुम वास्तव में उस जीवित ईश्वर के पुजारी हो तो फिर तुमको जीवन क्यों नहीं प्रदान हुआ ? वास्तव में हम उसी में रहते हैं, उसी में काम करते हैं, उसी में सांस लेते हैं, जो जीवित है। जीवित ईश्वर का उपासक कभी मृतक नहीं हो सकता।

वाह्य (बाहर) और अंतरी जीवन के सम्बन्ध एक से हैं। विचार करने वाले के लिए एक शिक्षा है।

जीवन क्या है ? इसका उत्तर ऊपर आ चुका है पर जिसने

अच्छे काम किए हैं हम उसी की बाबत कहते हैं कि जीवन का लेखा वर्षों से नहीं बल्कि नेक कामों से करना चाहिए। कितने बादशाह हुए जिन्होंने वर्षों राज किया। पर क्या तुम उनको जीवित कहोगे ? अमर हैं परम पुनीत और पवित्र आत्मा बुद्ध भगवान कि जिनकी शिक्षा की वीणा इन हजारों वर्षों में भी चुप होने में नहीं आती। जिन्दा है पवित्र जीवन महात्मा मसीह का जिन्होंने केवल सात वर्ष की आयु में ही आत्मिक विकास के विचार संसार में फैलाए और देखो आज किस प्रकार से हजारों वर्ष बीतने पर भी वह बाढ़ के समान संसार में फैलते जा रहे हैं। हम तुम्हारे मस्तिष्क को नहीं देखते, तुम्हारी बुद्धि को नहीं परखते, तुम्हारी विचित्र युक्ति को नहीं सुनते, तुम्हारे अध्यात्म विषय की ओर से अपने कान बन्द करते हैं। यदि तुम नेक हो, नेकी कर रहे हो, नेक विचारधारा तुम्हारे अन्तःकरण से निकल कर विश्व को शांति दे रही है, तो आओ हम तुमको अपने सिर पर बिठावेंगे, तुम्हारी बन्दगी करेंगे। तुम्हारी पूजा का दम भरेंगे। संसार हमको आदमी का पुजारी कहे, कुछ परवाह नहीं। हम पतंगे के समान प्रीतम के प्रेमी हैं। ऐसी मूर्तियों के जिनके मन में परमात्मा के प्रेम की बत्ती जल रही है, हम दंडवत करते हैं ऐसे परम पुनीत अस्तित्व को, जो उस अजर अमर से जीवन लाकर संसार को उसका भाग बांटता रहता है।

एक फारसी कविता का कैसा मनोहर सारांश है !

"संतों का दिल ही मसजिद है। वह सबके पूजने की जगह है, क्योंकि ईश्वर उसी में बसता है। हजरत पैगम्बर सा० ने कहा कि "खुदा ने फरमाया, मैं आसमान और जमीन में कहीं नहीं रहता। भक्तों के दिल में बसता हूं। यदि तू मुझको चाहता है तो उनके पास जाकर तलाश कर।" इसी दृष्टि से कबीर की वाणी है।

सत्त पुरुष की आरसी, संतन ही की देह ।
लखा जो चाहे अलख को, इनहीं में लख लेह ।
मन मेरा पंछी भया, उड़कर चला आकाश ।
स्वर्ग लोक खाली पड़ा, साहब संतन पास ।
साध हमारी आत्मा, हम साधुन के जीव ।
साधुन में हम यों रहें, ज्यों पै मद्धे घीव ।

और यह क्यों ऐसा कहा गया है ? क्यों कृष्ण, कबीर और मौलाना रूम आदि महात्मा ऐसा कहते हैं? कारण यह है कि जो रात दिन भगवान के प्रेम में मग्न रहते हैं, उनकी जिन्दगी ऊपर से आती है। वह लोक की नहीं बल्कि परलोक की है, जिसका सिलसिला अटूट और अविनाशी है। यह वह लहरें हैं जो एक ओर सागर से मिली रहती हैं और दूसरी ओर औरों को खींच कर सागर से मिला देती हैं।

संतों का हाथ उस अपार महासागर से मिला हुआ है। विचार करो, सोचो समझो, तुम पृथ्वी के प्राणी हो, न चर के न अचर के। मानुषी जीवन के रहस्य को समझो। इससे लाभ उठाओ ! यह हाथ से न जाने पावे। इसकी एक २ स्वांस अति अमूल्य है। कबीर साहब की वाणी है:—

कहता हूँ कह जात हूँ, कहा बजाऊं ढोल ।
स्वांसा खाली जात है, तीन लोक का मोल ॥
ऐसे मंहगे मोल का, एक सांस जो जाइ ।
चौदह लोक पटतर नहीं, क्यों तू धूल मिलाय ॥
नींद निशानी मौत की, उठ कबीरा जाग ।
और रसायन छांड़ कर, तू नाम रसायन लाग ॥
जाकी गांठी नाम है, ताके हैं सब ऋद्धि ।
कर जोड़े ठाड़ी रहें, आठ सिद्ध नौ निद्ध ॥

गर दिल में ख्याले नेक हो जाये ।
ना काम भी कामयाब हो जाये ॥
गर जात का इल्म अपने हासिल हो जाये ।
जर्रा भी आफताब हो जाये ॥

(३) सफलता का रहस्य

संसार किसकी खोज में है ? उसका अर्थ क्या है ? उसको परिश्रम की क्या आवश्यकता है ? यदि यह प्रश्न किसी व्यक्ति से पूछोगे तो शायद हर व्यक्ति यह ही उत्तर देगा कि सबको सुख की इच्छा है और उसी की खाज में यह सब परिश्रम, दौड़,धूप, चिंता, कथन, साधन और अभ्यास करते हैं। इसकी चिन्ता नहीं, पथ कितना ही अंधेरा क्यों न हो, चक्करदार हो, तंग हो पर उसका आधार सुख ही है। जीवन के सब अनुमान और ज्ञान का ध्येय सुख ही है।

सुखी होने के लिये जो मनुष्य कभी-कभी नाम लिया करता है वह सफलता है। जब हम किसी व्यक्ति के प्रयोजन को समझ लेते हैं कि सफलता से उसका क्या आशय है तो तुरंत ही हम उस भेद को जान लेते हैं जिस को पा कर वह सुखी हो जायगा।

यदि हम सैकड़ों मनुष्यों से पूछें कि तुम्हारा सफलता से क्या अभिप्राय है तो सैकड़ों ही उत्तर मिलेंगे। अंग्रेजी कोष में बताया गया है कि उससे मनुष्य के प्रयत्नों का पूर्ण रूप में सफल होना है और साधारण रूप में लोग इसी को सफलता कहते हैं।

पर यदि सफलता का वास्तविक रूप जानना चाहते हो तो इतना जान लो कि हम जिस काम को करना चाहते हैं उसके प्राप्त करने की शक्ति का नाम सफलता है। प्रथम हम इस बात की तनिक भी चिंता नहीं करते कि वह क्या काम करना चाहिये। सम्भव है कि तुम्हारे दृष्टि कोण से उसकी सफलता

और उसके काम करने का विचार नितांत भिन्न हो क्योंकि हर व्यक्ति को सफलता केवल उसके अपने विवेक विचार के आधीन मिलती है। हर व्यक्ति के विचार और ध्येय भी भिन्न होंगे। कुछ लोग धन और उसके प्राप्त करने के लक्ष्य को सफलता कहते हैं। उनको संसार चाहे अनेक प्रकार की सामग्री क्यों न जुटा दे पर वह उसको ही असफलता कहेंगे और सदा व्याकुल और चिंतित रहेंगे। सफलता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है और उसका लक्ष्य किसी सर्व व्यापक तत्व को बनाना अच्छा नहीं। एक व्यक्ति ने प्रेम और प्यार को सफलता समझ रक्खा है। सम्भव है कि उसके पास धन हो, नेक नामी हो, मान हो, प्रतिष्ठा हो, यदि उसमें प्रेम न हो तो संसार उसके लिए अंधेरा है, क्योंकि वास्तव में उसके प्राप्त करने के काम में ही उसकी असली सफलता और मान है।

जब हम सफलता की मात्रा को मनुष्य की लगन और पुरुषार्थ की तराजू में तोलते हैं तो हम इस नतीजे पर पहुंचने के लिए विवश होते हैं **कि सफलता का नियम और उसकी पूर्त्ति, केवल व्यक्ति की विचार शक्ति और उसकी सफलता का पूर्ण रूप में पालन करना है।**

सफलता की बाबत साधारण व्यक्तियों का विचार है कि वह एक ऐसी अद्भुत और सूक्ष्म वस्तु है जो केवल थोड़े भाग्यशाली पुरुषों के भाग में आती है। यह भ्रम है, मिथ्या है, भूल है। वह एक असली तत्व और प्रगट वस्तु है जिसके अस्तित्व, और होने से इन्कार करना ठीक नहीं। वह प्राणी मात्र के संग, चाहे वह किसी श्रेणी का हो, रहती है।

इस पर विचार करने से सहज में ही समझ में आ सकता है कि अपनी इच्छाओं की पूर्ति ही सफलता है और आवश्यकतानुसार काम न करने की शक्ति ही असफलता है। यह प्रश्न

एक प्रकार से हल हो गया। अब दूसरा प्रश्न यह है कि 'क्या कारण है कि प्राणी को जीवन के सब उद्देश्यों में वह चीजें नहीं मिलतीं जिनकी उसको कामना रहती है या जब उनकी जरुरत होती है और जब तक उनकी यह इच्छा रहती है क्या कारण है हम अपनी इच्छाशक्ति के अनुसार सफल नहीं होते। यह एक अति महत्व का प्रश्न है और इसका उत्तर भी वैसा ही महत्व का होगा। उत्तर यह है :—हमारी सफलता और असफलता का आधार केवल इस बात पर है कि हम कहां तक सफल होने के नियम का पालन करते हैं।

हर प्राणी की सफलता की रचना बिल्कुल वैसी ही है जैसी मानव जोवन की रचना है। असफलता या कमी केवल इस कारण है कि हम अपने आपको, अपनी स्थिति को नहीं समझते और न हमको यह पता है कि सर्वव्यापक ब्रह्मांडी भंडार के साथ हमने कहां तक सम्पर्क और नाता जोड़ लिया है।

सफलता हमको केवल इस कारण मिलती है कि हम उसको अपने आधीन बनाने के लिए विवश करते हैं। यदि हमने उसको विवश कर लिया तो फिर वह एक पल का भी बिलम्ब नहीं करती और बिना किसी संकोच के तुरन्त झपट कर हम से आ मिलती है। सफल असफल होने की शक्ति हमारे अपने अन्दर है। हम सफलता प्राप्त कर लेते हैं क्योंकि हमारा विश्वास है कि हम सफलता प्राप्त कर लेंगे और उस सफलता के साधन सोचते हैं। और जब तक हम को उसके रोकने और उससे काम लेने की शक्ति, धैर्य और साहस है तब तक वह हमारी रहती है। वह हमारी होकर केवल इस कारण रहती है क्योंकि हम को विश्वास हो जाता है कि वह हमारी है। हम उसको अपने आधीन उस समय तक रख सकते हैं जब तक हमको विश्वास है कि हम में रोकने की शक्ति है। सुख, सफलता, फन और रुचि

दायक भोग प्राप्त हो जाते हैं और केवल इस कारण हमारे अंग संग रहते हैं कि हमने उनको अपने आधीन कर रक्खा है कि वह हमको छोड़ न सकें।

हम जो चाहें वह मिल सकता है और जिस वस्तु से हम अपनी इच्छानुसार सुख प्राप्त करना चाहते हैं वह ईश्वरीय नियम के आधीन हमको मिल जाता है। ब्रह्मांडी मन, ब्रह्मांडी संकल्प शक्ति उसकी सफलता में, उसके भोगने में हमारे सहायक रहेंगे। जब तक कि हम अपनी उस कमाई को इस नियम के साथ रख सकें कि उस से किसी दूसरे का अहित न हो और दूसरे प्राणी इसके कारण दुखी न हों। इस बात का ध्यान न हो कि वह चीज जिसको हम चाहते हैं बुरी है या भली है। इस नियम के लिए केवल इतना ही बहुत है "कि हम चाहते हैं" और वह हमको मिल रहेगी। हमारी इच्छा करना ही नियम हैं और हम उसको पाकर उस समय तक रख सकेंगे जब तक हम खुद उससे मुख न मोड़ लेंगे और जान न लेंगे कि उसका इलाज खुद उस वस्तु में थ।।

शारीरिक जीवन वहाँ ही है जहाँ मनुष्य सफलता और खुशी के हेतु परिश्रम करते हैं। कुछ मनुष्य इनमें से विशेष प्रकार से अभागे कर्म हीन नजर आते हैं। इनको सफलता प्राप्त नहीं होती। यदि वह सोने को हाथ लगाते हैं तो वह मिट्टी बन जाता है। देखने में वे कोशिश करते हैं, काम करते है, परिश्रम करते हैं परन्तु सफलता नहीं होती। वे सदा बेकार रहते हैं। यदि काम में हाथ लगाते हैं तो वह बिगड़ जाता है। यदि वह नौकरी करत हैं तो बीमार पड़ जाते हैं। नौकरी से बरखास्त कर दिए जाते हैं। वह सदा गरीब रहते हैं। असफलता गले का हार बन जाती है, और इनके शरीर की रग-रग में असफलता ही असफलता भरी रहती है। सब संसार करीब करीब ऐसे

मनुष्यों से भरा हुआ है, जो रात दिन भाग को कोसते रहते हैं, और वह सफल नहीं होते । यह संसार के भाग्य हीन मनुष्यों की बातचीत करने का ढंग है। उनको अपनी इच्छानुसार कोई चीज नहीं मिलती और वह सुख से बंचित होकर रहते हैं। वे यह नहीं जानते कि यह सब बातें उनकी आप अपनी भूल और भ्रम का परिणाम हैं। वे यह नहीं जानते कि यदि वे दुनिया का अभय होकर सामना करें और अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए प्रार्थना करें और जब तक इच्छा पूरी न हो जाय, कभी चैन न लें तो अवश्य ही अपना ध्येय प्राप्त कर लेंगे। उनको यह नहीं पता है कि वह किस तरह अन्तर में अपने आपको ऊपर उठावें, ताकि सब लोग उनको देखें और उनका मान करें।

जो व्यक्ति बेमन के, आलस और सुस्ती से काम करता है और यह ख्याल उसके मन को कुदेरता रहता है कि मैं अभागा हूँ वह सदा भाग्यहीन बना रहेगा; क्योंकि उसने खुद अपने आपको कर्म हीन बना रक्खा है। कोई मनुष्य आलसी आदमी से काम नहीं लेता। कार्य कुशल मनुष्य ऐसे नौकर तलाश करते हैं जो महनती हों और जिनके साहस, दृढ़ विश्वास और परिश्रम से काम पूरा हो जाय। संसार का हर काम चाहता है कि उसको कोई जीता जागता पुरुष हाथ लगावे। पर सोते हुए आलसी मृतकों का बाजार में कोई मोल नहीं लगाता।

काम की तलाश करने वाले और काम करने वालों में भेद होता है। अधिक लोग काम चाहते हैं पर वह यह नहीं समझते कि काम का अर्थ यह है कि वह परिश्रम करें। वह चाहते हैं कि अच्छा और हलका काम मिल जाय जिससे उनको अच्छी तनखाह महीने भर के बाद मिल जाया करे और उनको अधिक परिश्रम भी न करना पड़े। जिसको काम करना है वह कभी खाली

नहीं रहता। यदि वह काम की इच्छा करे तो उसको हर चीज मिल जायगी और वह जब तक उससे हार न मान जायगा अथवा उस काम से अधिक और श्रेष्ठ काम की योग्यता न प्राप्त कर लेगा तब तक उस काम को कर सकेगा। उसके बाद सहज में ही उसको अच्छा काम मिल जायगा और वह सदा खुश रहेगा, क्योंकि उसको सदैव इच्छानुसार काम मिलेगा और वह उसको अपने हाथ में रक्खेगा। वह जानता है जब तक मैं काम करने के योग्य हूँ कोई मुझसे उसको छीन नहीं सकता। पर जो यों ही काम की तलाश में रहता है वह काम पाकर भी बे काम कर दिया जाता है, जब तक कोई हाथ में डंडा लेकर उससे काम न कराये।

यदि आधी दुनिया जो हाथ पर हाथ धरे बैठी हुई अच्छे समय, अच्छे अवसर का आसरा ताकती है, इतना जान जाती कि सफलता का भेद क्या है और कर्मों के नियम को समझ लेती, तो उसको सहज में पता चल जाता कि संसार में केवल वह ही व्यक्ति सफल हो पाए हैं जिन्होंने अपनी योग्यता में उन्नति की। अपनी आत्मा को ऊपर उठाया अथवा अपनी इच्छा को दूसरे काम के करने में लगा दिया। सफल और असफल मनुष्य में केवल इतना ही अन्तर है। एक तो बाहरी सामान के साथ अपने निज रूप के सम्बन्ध को समझता है दूसरे को समझ नहीं है। जो व्यक्ति जानता है कि मैं सफल हो जाऊंगा वह अपने ध्येय को जानकर उससे सम्बन्ध स्थापित कर लेता है और हर समय समझता रहता है कि मैं सब कुछ कर सकता हूँ। वह हाथ पांव मारता हुआ बिना किसी प्रकार के विघ्न के, बिना किसी कमजोरी के, बिना किसी चिन्ता और संकोच के, वह ब्रह्मांड के उस भंडार को अपना केन्द्र बना लेता है जो सबके लिए हर प्रकार का सामान इकट्ठा करता है। यह मनुष्य उससे

माँगता है और इसके लिए कभी इन्कार या वाइदे का शब्द इस्तेमाल नहीं किया जाता।

हमारे भीतर एक जीती जागती शक्ति है जिसकी अपेक्षा से और सब वस्तु भरी हुई हैं। यदि हम उसको समझ लें कि यह केन्द्र खुद हमारी सब शक्तियों का भंडार है, यहां ही से हम बल लेते हैं, यहां ही बल को जमा करते हैं, तो इस पर हम अपनी विचार शक्ति और दृढ़ प्रतिज्ञा से शासन करते हैं। हम संसार में जिस वस्तु को चाहें उसको केवल अपने प्रभाव से, अपने विचार से, अपनी चुम्बकीय धार से, अपनी ओर खेंच ला सकते हैं और जैसे चाहें, जिस रूप में चाहें उसको बदल सकते हैं। हमको केवल इतना ही निर्णय करना है कि किस प्रकार की सफलता की आवश्यकता है। हमको यह भी विश्वास हो जाय कि हम उसको वास्तव में चाहते हैं, तब उस अटल भंडार का ध्यान और अनुभव करें।

साहब के दरबार में, कमी वस्तु की नांहि।
बन्दा मौज न पावहीं, चूक चाकरी मांहि।

प्रभु मसीह कहा करते थे "जो मेरे बाप का है वह मेरा है" और तुम भी अपने विचार के केन्द्र में, इच्छा और स्वार्थ को दृढ़ प्रत्यज्ञ होकर, ब्रह्मांडी जीवन की बाटिका में हित चित से, अपनी सर्व शक्ति से, सब इन्द्रियों पर शासन करके उसकी सैर करो और सीधे उससे अपनी सफलता की आशा करो। उसी घड़ी तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होने लगेगी और वह सफलता उस समय तक तुम्हारे समीप हाथ बांधे खड़ी रहेगी जब तक तुम उसको, अथवा अपने को पतित नहीं करते या जब तक अपने को अनाधिकारी नहीं बनाते। जिसने सफलता के इस रहस्य को समझ लिया, जिसके मस्तिष्क में सफलता का यह

मन्त्र समा गया, सफलता उसके पाँव पड़ती है और वह अपने ऐसे महात्मा की सेवा करने को अहो भाग्य जानती है। यह प्रकृति का अटल नियम है। और बातें चाहें मिथ्या हो जांय परन्तु इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। विश्वास, दृढ़ साहस, दृढ़ मन और दृढ़ प्रत्यज्ञा और इच्छा से मनुष्य क्या नहीं कर सकता!

जिसके चित में उत्तेजना की मशाल नहीं जल रही है, जिसके मन में दृढ़ प्रत्यज्ञा का प्रकाश नहीं चमक रहा है, जिसके अन्दर धैर्य,साहस और उन्नति के शिखर पर पहुँचने की लालसा नहीं है, वह कायर कभी अपनी जिभ्या पर सफलता का शब्द न लावे। सफलता उससे लजाती है, सकुचती है, उसका नाम लेने ही से उसकी बदनामी होती है। ऐसा व्यक्ति कभी किसी काम को उन्नति के शिखर पर न पहुँचा सकेगा,न इसको अधिक समय तक जारी रख सकेगा। वह कायर है,मैदान छोड़कर भाग जायगा। कसौटी से परखने पर पींठ दिखा जायगा। यह दूसरों का क्या खाक काम करेगा! खुद काम बिगाड़ लेगा, क्योंकि उसके अन्दर वह भाव अभी पैदा नहीं हुआ, जो सफलता की डिग्री प्रदान करता है। जिसको अपने अन्तःकरण की शक्ति का ज्ञान हो गया वह आत्मा के दबे हुए कोषों को प्रकाशमान कर देता है। अन्धकार दूर होकर प्रकाश छा जाता है। रात की अन्धियारी जाती रहती है और सफलता का सूर्य अपने केन्द्र पर पहुँचकर अन्धेरे स्थान को जगमगा देता है।

हर मनुष्य इन दोनों अवस्थाओं में से एक या दोनों का अनुयायी बन सकता है। यदि वह उच्च श्रेणी का है और उन्नति के शिखर पर पहुँचने का अभिलाषी है और अपने भाव या विचारों को किसी बड़े ऊंचे इष्ट के केन्द्र पर सदा स्थित रखता है तो वह उनसे भी ऊंचे उन्नति कर जायगा। वह एक स्थानी अथवा उसके बन्धन में कभी न रहेगा, यदि वह वास्तव में उस

पद का हित चित से अधिकारी हो। यदि वह चाहता है कि कुछ दिनों वह वहां और ठहरे, तो दूसरी बात है। वह वहाँ रहेगा वर्ना दिन प्रतिदिन ऊंचा चढ़ता जायगा। यह ऋषि का अटल नियम है जो किताब के लेखों में नहीं लिखा जाता, बल्कि हर जगह एक-एक अणु के अन्तःकरण में किसी महान लेखक की भूल न करने वाली कलम ने लिख रक्खा है कि "हम जैसे योग्य या पात्र बनते जाते हैं वैसे ही आगे को बढ़ते जायेंगे।" जितनी देर में हम एक बिन्दु पर स्थित होकर उसके बदलने की शक्ति प्राप्त कर लेंगे, त्यों ही हम में ऊंचे स्थान पर चढ़ने का अधिकार आ जायगा, वाह्य जगत या बाहरी सामान हमारे बदलते जायेंगे और हम दिव्य दृष्टि होकर सार तत्व,अर्थ सिद्धि, परम प्रकाश और अपने इष्ट का दर्शन कर सकेंगे।

जब हमने इस शिक्षा को पूर्ण रूप में हृदयांकित कर लिया, तो हम उसी घड़ी वाह्य जगत या संसारी ज्ञान के स्वामी बन जाते हैं। किसी को सामर्थ्य नहीं कि हमारे समीप विरोध का दम भर सके। हम संसारी शक्तियों के स्वामी बन जाते हैं, क्यों कि हम किसी ऊंची शक्ति के बड़े अंग हैं। यह हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है कि हम आज्ञा करें और दूसरे हमारी आज्ञा का पालन करें।

यदि हम वास्तव में स्वस्थ रहने के इच्छुक हैं तो रोग हमको अपने वशीभूत न कर सकेगा। स्वास्थ्य ही असली सुख और सफलता है, क्योंकि थोड़े दिव्य दृष्टि होने से अपने चारों ओर जीवन के सागर को लहरें लेते हुए देखेंगे, जिसमें न रोग है, न शोक है, न पुन्य है, न पाप है। हम समझ जायेंगे कि रोग का सम्बन्ध केवल शरीर की अपेक्षा से है और ऊंची और अपार जीवन ज्योति हमारे अंग संग रहकर हमारी वृत्तियों का रुख अपने ही समान रक्खेगी। हम उसकी ऊंची धारों के पात्र बन

जायेंगे और पाप रोग और मृत्यु का भय सदा के लिए दूर हो जायगा। फिर इनमें से कोई हमारे ऊपर अधिकार न कर सकेगा।

यदि हम धन के इच्छुक हैं, यदि धन ही हमारे ध्येय या सफलता का लक्ष्य है, तो हम ब्रह्मांडी भंडार से मिलकर उससे सीधे अपने लिए रुपए पैसे असरफियां ले सकेंगे और शारीरिक कामनाओं की पूर्ति कर लेंगे। इस बात का ध्यान नहीं कि किस तरह की सफलता के हम इच्छुक हैं। हम उसको प्राप्त कर लेंगे क्योंकि हम प्रकृति की मांग और उसकी दैन की नीति पर विजय पा लेंगे और उसके शासक होंगे, जैसे आत्मा प्रकृति का स्वामी है। यदि हम इस शरीर के रहते हुए ही मिल रहें तो शरीर के रहते हुए इसी जीवन में पूर्ण सफलताओं को प्राप्त कर सकते हैं। यदि हमको प्रेम चाहिए तो हम अपनी दृष्टि को ऊंचा उठा कर उस प्रेम की मूर्ति का दर्शन करें। वह हमारे पास आवेगा हमसे बातचीन करेगा, हमसे मिलेगा।

पीछे पीछे हरि फिरें, कहत कबीर कबीर।"

पर जब हम मेल मिलाप के भाव को यथार्थ रूप में अनुभव करलेंगे तो याद रहे शारिरिक दुख दर्दका नाम व निशान तक बाकी न रहेगा। हम वाह्य प्रेम के स्त्री और पुरुषों को अपने ही अन्दर देखेंगे। यह सब हममें हमारे अन्दर चलते फिरते होंगे, सांस लेते होंगे और सब उस सत्य लोक के रहने वाले बन जायेंगे। इस अन्तिम अवस्था में हम ईश्वर का दर्शन करेंगे जो सत है, अविनाशी है, अनादि, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, सर्वअन्तर्यामी, या हर जगह विराजमान है। यहां सुख, जीवन और सफलता सब समान हैं क्योंकि वह एक है और एक में, अनुभव में, विचार का दर्जा कहाँ रहता है !

बुन्द देश त्रिलोका जानो। रचन मुरक्किब[1] यहां पहचानो।
मुफरिद[2] रचना हमरे देश। सत्य सत्य यह सत्य संदेश।
एक एक में कहा विचार। जहां मिलोनी तहाँ विचार।

हर व्यक्ति एक समान बड़ा नहीं हो सकता, वरन् फिर इस लोक में छोटे बड़े की पहचान असम्भव हो जाती। पर इसका हर व्यक्ति को विश्वास है कि वह इस सत को अपने हृदयाँकित करले कि "अपने अन्दर की छिपी हुई शक्ति को अधिकाँश हर मनुष्य बढ़ा सकता है।"

हर पुरुष अपने लिऐ ऊंचे इष्ट बाँध सकता है और ब्रह्माँडी मन से मिलकर सुख चैन से धीरे धीरे अपने आपको आदर्श तक पहुंचा सकता है, यहाँ तक कि वह सबसे ऊंचे, उज्वल और सूक्ष्म लोक में दाखिल होकर उस अवस्था को पहुंच जायगा जो अकथ है।

मैं तू हुआ तू मैं हुआ, मैं तन हुआ तू जाँ हुआ।
कोई फिर कैसे कहे! मैं और हूं तू और है।

ऐसा होजाय कि आत्मा मन को आदेश देता रहे और मन आत्मा के अधिकार में आजाय। यह हमारा अपना दोष है कि हम अपने जीवन को बन्धन में डाल लेते हैं और तंग बन जाते हैं। अपनी आशाओं को अपनी इच्छाओं को और अपनी भावनाओं को छोटी-छोटी बातों के बन्धन में डाल देते हैं। यह हमारा अपना दोष है, कि हमारा काम संसारी बन्धन से बंधा हुआ मृतक के समान हो जाता है और हम उसी तरह काम करने लग जाते हैं जिस तरह लोग चाहते हैं कि हम काम करें। दुनिया स्वार्थी है वह चाहती है कि हमारी सफलता से उसको लाभ हो। हम कठपुतलो की भाँति हर घड़ी उसकी हां में हां मिलाते रहें। यह हमारा अपना दोष है कि हम आत्मा के 'स्वतंत्र'

१—मिली हुई २—एक

भाव की निज बापौती को अपने हृदयांकित नहीं करते और पथ भ्रष्ट होरहे हैं। जहाँ व्यक्तिगत सफलता और स्वार्थ सिद्धि के बोल सुनाई दे रहे हैं, वह काल की पुकार है।

यदि हम कायर हैं और कायरों का सा स्वभाव रखते हैं तो न तो हम बड़े काम कर सकेंगे, न सफलता के पथ पर चल सकेंगे। न अपना भला कर सकेंगे, न औरों के काम आवेंगे। जिस तरह हमको ईश्वर में विश्वास है, जिस तरह हम ईश्वर की महिमा, ईश्वर की अपार शक्ति और ईश्वर की अनन्त दया पर विश्वास रखते हैं, उसी तरह हमको अपने आत्मा पर, अपने साहस, अपने उत्साह पर और अपने भुजबल पर विश्वास रखना चाहिये। कभी न कहो समय व्यतीत हो गया। कभी न कहो हम अपने में परिवर्तन नहीं कर सकते। कभी न कहो पतित दशा के बदले हम उन्नतिशील नहीं बन सकते। ऐसा कहने वाले नासमझ, आलसी, कायर और आत्म सत्ता से विमुख हैं। आत्मा पर, आत्मा की शक्ति पर, परमात्मा पर और परमात्मा की दया पर अटल विश्वास रक्खो। तुम सब कुछ कर सकते हो, सब कुछ कर सकोगे, सब कुछ कर चुके हो, क्योंकि आत्मा ही सृष्टि का सच्चा स्वामी, सर्व शक्तिमान और सर्व श्रेष्ठ तत्व है।

सफल या शक्तिशाली होने के लिये आवश्यकता है कि हम ऊंचे की ओर देखें, नीचे की ओर न देखें।

बने तो सतगुरु से बने, नहीं बिगड़े भरपूर।
तुलसी बने जो आनते, ता बनिये पे धूर।
जाकी रही भावना जैसी।
प्रभु मूर्ति देखी तिन तैसी।

अपनी बुद्धि व विचार ने जो विश्वास का पर्वत बनाया है उसके शिखर पर चढ़ चलो। मनुष्य की कोशिशों की तंग व अंधेरी गुफाओं में पाँव घसीटने से तत्काल मना कर दो। हम इस कारण

प्रगट हुये हैं कि ऊंचे की ओर देखें, ऊंचे चलें, न कि हमारी दृष्टि नीचे की ओर हो और हम नीचता से अपने दूसरे भाइयों के दोषों को देखें और उनकी शान में बुरा भला कहा करें।

आओ अपने काम को साहस और संयम से करो। इस काम में सभ्यता, शोभा, चित की उदारता दिखाओ और अपनी सब शक्ति, परिश्रम और साहस को उस इच्छा के चारों ओर लगादो जो तुम्हारी धारणा है और तब ब्रह्मांडी कोष से प्रार्थना करो। विश्वास रक्खो तुम कभी निराश न बनाये जाओगे और न तुम्हारा मनोरथ कभी असफल होगा।

———

४—विचार और उसकी शक्ति

जो लोग विचार को कोरा कल्पित समझते हैं। वह अपनी नासमझी का स्वयं सबूत दे रहे हैं। विचार चाहे वह किसी तरह का हो, अपना विशेष प्रकार का प्रभाव रखता है। महात्माओं ने इस विचार को महान शक्ति समझा था। केवल इतना ही नहीं बल्कि संसार में जितने काम होते हैं इन सब की जड़ में विचार ही रहता है। काम भी तीन तरह के बताऐ गऐ हैं:— एक वह जो मन में पैदा होता है, दूसरा वह जो वाणी द्वारा प्रगट किया जाता है,तीसरा वह जो हाथ से किया जाता है। कहा जाता है कि तुम मन बचन और कर्म से शुद्ध रहो और वास्तव में जो मन बचन और कर्म की अपेक्षा से शुद्ध नहीं होता है उसको कोई शुद्ध नहीं कह सकता। यह तीनों कर्म कहलाते हैं। कहने के लिए तो इन तीनों के तीन भिन्न-भिन्न रूप हैं और तीन प्रकार के हैं परन्तु यदि मन के अन्दर घुसकर देखा जाय तो यह तीन भिन्न कर्म नहीं हैं। कर्म एक है। केवल तीन भिन्न-भिन्न स्थान भेद से तीन प्रकार का माना जाता है।

जैसे एक मनुष्य किसी का बुरा चाहता है। प्रथम ही उसके मन में विरोधी व्यक्ति के प्रति बुरा विचार पैदा होता है, फिर इसी विचार की लहरें जिभ्या पर आती हैं और वह बुरा कहने लगता है। फिर जब वह लहर हाथों में कर्म करती है कर्म का नाम पाती है।

पर मनुष्य को इतना और विचार करना चाहिऐ कि यह नितान्त आवश्यक नहीं है कि विचार की लहरें पैदा होकर व्यर्थ बाहरी दो चरणों में अपने को प्रगट करें। यह एक ही वस्तु होते हुए भी अपने-अपने चरणों में विशेष प्रकार के रूपों में कर्म करते हैं। यह सत्य है कि विचार मन में फुरता है, परन्तु यह जरूरी नहीं है कि व्यर्थ उसके प्रगट होने के लिए वाणी या हाथ की सदा जरूरत हुआ करे। विचार स्वयं मन में रहकर विचित्र ढंग से कर्म करता है। यहाँ इसकी शक्ति सूक्ष्म होती है और हर बुद्धिमान समझ सकता है कि सूक्ष्म वस्तु स्थूल की अपेक्षा अति प्रभावशाली, अधिक जीवन प्रदान करने वाली और अधिक उत्साह जनक होती है। मन में रहकर मन से सूक्ष्म परमाणुओं के रूप में निकल कर अन्दर से बाहर तक एक विशेष प्रकार की धार बनकर मानसिक चमत्कार दिखा सकती है।

धार्मिक पुस्तकों ने इस बात पर बड़े विस्तार के साथ उल्लेख किया है कि किसी मनुष्य का जी न दुखाया जाय। पारसी सूफियों ने भी उसके महत्व पर बड़ा बल दिया है और बड़े-बड़े संत महात्माओं ने पुकार-पुकार कर कहा है कि इसको समझो कि मन में ईश्वर बसता है। उसको मत दुखाओ। महाभारत में भीष्म पितामह ने विशेष प्रकार से युधिष्ठर महाराज से कहा है कि कभी भी गरीब प्रजा का दिल न दुखाया जाय क्योंकि:—

तुलसी आह गरीब की, हरि सों सही न जाय।
मुई खाल की सांस ते, लोह भस्म हो जाय।

एक फारसी भाषा के कवि के वचन का सारांश है:— "कि सताऐ हुऐ की आह मालिक के तख्त को हिला देती है और वह साथ ही दौड़ा चला आता है।"

जब मनुष्य किसी को सताता है, तो सताये हुये के दिल से दर्द भरे विचार निकलते हैं और चूंकि वह वाणी से और हाथ से बदला नहीं ले सकता है, मन ही मन बार-बार दुख प्रतीत करता है और शत्रु का बुरा चाहने से उसके विचार कीधारें निकल कर उसको मार देती हैं। इससे प्रगट है कि कमजोर मनुष्य भी अपने विचारों के बार-बार सोचने से ताकतवर मनुष्य को नबा सकता है। केवल यह देखना चाहिये कि इसके विचारों में घनी दृढ़ता कहाँ तक है। कहाँ तक उसने इसका अनुभव कर लिया है और वह अभी तक इस योग्य बना है कि नहीं कि वह विचारों की धार को शत्रु तक पहुँचा सके। यह शक्ति सीखने या विद्या प्राप्त करने से आती है। कभी कभी आप ही पैदा हो जाती है। हिन्दू धर्म के तांत्रिक काल में जब मंत्र यंत्र और तंत्र पर लोग अधिक विश्वास करते थे, विचारों की शक्ति से जानकार हो चले थे, परन्तु मन और मस्तिष्क का सुधार न होने के कारण वह अपने साधन में कुछ मिथ्या और व्यर्थ के विश्वास शामिल रखते थे। इसके कारण विद्या का अन्त हो गया। मारन उच्चाटन वशीकरण आदि के मन्त्र कुछ मनुष्यों ने सुने होंगे। यह क्या हैं? यह केवल विचारों के सुधार और कायदे में लाने वाले साधन हैं। आप देखते हैं, जिस समय हम किसी कविता को एक विशेष मधुर सुर में सुनते हैं समाधि लगन लगती है। हम जब खुद किसी प्रभावशाली वाणी को एक विशेष मनोरम ढंग से पढ़ते हैं तब भी वही दशा होती है। हम में मस्ती और बेसुधी आजाती है तांत्रिकों के मंत्रों का भी यह ही हाल है। उनके अटपटे और बिना अर्थ के शब्दों में एक शक्ति होती है और जब

बार-बार उसी ढंग में पड़ते हुए विचार की लहर को दूर भेजते हैं तो जो विचार भेजने वाले का उद्देश्य होता है वह पूरा हो जाता है। यदि वह चाहता है कि कि शत्रु मर जाय तो मर जाता है। यदि वह चाहता है कि उसका मन उचट जाय तो उसका मन उचट जाता है। यदि वह चाहता है कि उसका मन वस में आ जाय तो वह महरबान हो जाता है। यह मारन, उच्चाटन और वशोकरण का भेद है। विचार जब बार-बार सोचे जाते हैं तो उनमें बल और शक्ति उत्पन्न होती है और अपनी शक्ति और बल के अनुसार परिणाम दिखाए बिना नहीं रहते।

कभी २ देखा गया है कि कुछ निर्दयता के साथ राज करने वाले राजा सहज में हीं अपनी प्रजा के विषय विकारों के हमले के कारण अकाल मृत्यु के मुख में चले जाते हैं। इसको अधिक समझाने की आवश्यकता नहीं। अपने चारों ओर ध्यान करके और समय के हालात पर दृष्टि डालने से इस प्रकार की घटना सहज ही समझ में आ सकती हैं। एक स्वस्थ और शक्तिमान हाकिम आता है। वह अनं समझ और अपना कठोर स्वभाव होने के कारण व्यर्थ सताने लगता है। किसी को देश निकाला देता है किसी को बन्दी बना देता है। सब प्रजा व्याकुल हो जाती है। परिणाम क्या होता है ? चूंकि सताते सताते उसका मन धीरे धीरे शक्तिहीन हो जाता है, महान दुख से पीड़ित प्रजा की आहों की धारें उस पर आक्रमण कर देती हैं। दीन दुखी और तो कुछ कर नहीं सकते मन ही मन में अकुलाते रहते हैं। इनकी व्याकुलता की हृदय बेधक धारें बराबर निर्दई के हृदय से जाकर टकराती रहती हैं और वह बीमार हो जाता है। रात को नींद नहीं आती। डाक्टर पर डाक्टर बुलाये जाते हैं,दवाओं पर दवायें पिलाई जाती हैं, पर सब व्यर्थ।

"मरीजे इश्क पर रहमत खुदा की, मर्ज बढ़ता गया ज्यों २ दवा की।"

सब लोग चकित रह जाते हैं। रहस्य समझ में नहीं आता। अभी पन्द्रह दिन पहले यह भला चंगा था, अब क्या हो गया। "भला चंगा गिरफ्तारे बला क्योंकर हुआ।"

अन्त में वह निर्दई तड़प २ कर अत्यंत कष्ट और यातना सहता हुआ जान देता है। जो मनुष्य असलियत को समझते हैं उनको मूल कारण के जानने में कठिनाई नहीं होती। जो नहीं जानते अनेक प्रकार की बातें गढ़ते हैं।

विचार अति विषम और मारने वाले शस्त्र हैं, जो अति दीन दुखी प्रजा अपने राजा के प्रति चलाती है। विशेषत: रूस देश में इस प्रकार बहुत से अधर्मी मनुष्य जनता के विचारों के शिकार बनते हैं। प्राचीन आर्यवृत में मनुष्य विचार शक्ति को बहुत कुछ समझते थे और यही कारण है कि शासक वर्ग बड़े सोच समझ कर अपने धर्म को विचार कर और उसको निजी सम्बन्ध से अलग रखकर, निष्काम होकर, अपने, सेवा भाव का पालन करते थे। इस प्रकार के शासक इस भय से बचे रहते थे और उन पर विचार शक्ति का प्रभाव नहीं पड़ सकता था, क्योंकि राज्य की बागडोर हाथ में रखते हुए एक प्रकार की तपस्या करते रहते थे। ऐसा परम पुनीत और पवित्र उदाहरण कृष्ण भगवान का है। जिस प्रकार विचार में मारने की शक्ति है, उसी प्रकार जीवित रखने की भी शक्ति है। यदि आप किसी पुरुष को बार बार आशीर्वाद देते रहें, उसके मन को सुख मिलता है। आशीर्वाद भी एक तरह पर विचार की लहर है। कहानी है हिमायूँ बादशाह बहुत बीमार पड़ गया। जहीदउदीन बाबर उसका पिता था। अति चिन्तित हुआ। उसने हुमायूँ

के बिस्तर के निकट सात बार परिक्रमा दी। अंतःकरण से प्रार्थना की कि हे मालिक ! यह बच जाय और मैं मर जाऊँ ! परिणाम यह हुआ कि हुमायूँ उसी दिन से अच्छा होने लगा और बाबर बीमार पड़ गया और मर गया। बात क्या हुई ? बाबर के आरोग्य प्रद विचार हुमायूँ के मन में बस गये और उसके रोग के विचार उसमें चले गए।

राजा भोज अपने समय का अति चतुर और न्यायी राजा था। सब प्रजा उसकी हितचित से सराहना करती थी। वह राज काज से बड़ा सुखी रहता था। वह एक बुड्ढी दुकानदार स्त्री की दुकान के सामने से जाता उसको महान दुख प्रतीत होता और जब उस स्त्री को देखता तो भय के कारण कांप जाता था। कई दिन उसने इस बात पर विचार किया। कोई बात समझ में न आई। अंत को उसने अपने मंत्री से कहा। मंत्री ने जाँच करना शुरू किया तो पता लगा कि उस बुढ़िया ने कई मन चंदन की लकड़ी इकट्ठी कर रक्खी हैं। वह बिकती नहीं है। उसके मन में यह विचार रहता है कि जब राजा भोज मरेगा, यह लकड़ी उसकी चिता जलाने को मोल लेली जावेंगी और वह रात दिन दुआ करती थी कि राजा मर जाय। चूंकि उसके विचार की धारें राजा के मन से टकराती थीं, इसलिये उसको दुख होता था। चतुर और स्याने मंत्री ने वह लकड़ी मोल ले लीं और बूढ़ी से कहा माई राजा के अधिक जीवन की दुआ मांगा कर। वह हंसी और उसका वह विचार जाता रहा। चिन्ता दूर हुई। फिर जब राजा उसकी दुकान के पास होकर जाता तो मारने वाली लहरों के विपरीत अब जीवन की लहरें आने लगीं।

जब मनुष्य बीमार हो तो तुम सुख और स्वस्थ होने के विचार को सच्चे हित चित और प्रेम के साथ उसको अच्छे होने

का विश्वास दिलाते रहो। तुम्हारे स्वस्थ करने वाले विचार उसको शीघ्र ही स्वस्थ कर देंगे।

यदि यह चाहते हो कि तुम्हारे चारों ओर जीवन पैदा हो तो जीवन के सम्बन्ध में अपने विचारों को अपने चारों ओर फैलाने की कोशिश करो। समय बदल जायगा। यह एक रहस्य है जो हर व्यक्ति को अपने हृदयाँकित करना उचित है।

परम संत कबीर साहब ने अपनी साखी में एक अति अमूल्य दोहा लिख रक्खा है जो मोतियों से तोले जाने योग्य है:—

मन गोरख मन गोविन्दा, मन ही औगढ होय।
जो मन राखै यत्न कर, मन ही करता होय।

भाव यह है कि मन ही सब कुछ है। यदि कोई इसको अधिकार में रखने का भेद जानता है तो यह मन ही स्वामी हो सकता है।

कम बुद्धि वालों को इसमें अद्वैत बाद की शिक्षा मिलेगी परन्तु यह मिथ्या है। कबीर साहब द्वैत वादी थे। उनके कथन का सार कुछ और है। उनका भाव यह है कि मनुष्य जो कुछ सोचता है वह वैसा ही हो जाता है। यहाँ तक कि पैदा करने वाले तक के गुण उसमें आ जाते हैं। ईश्वर के विराट रूप का तीन रूपों में वर्णन किया गया है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश। ब्रह्मा उत्पत्ति करने वाले, विष्णु पालन करने वाले, कायम रखने वाले, नियम में रखने वाले और महेश विनाश या नष्ट करने वाले हैं। पुरुष एक है। उसके तीन गुण को कवियों के अलंकार में अलग-अलग करके दिखाने का यत्न किया गया है। यह तीनों गुण मनुष्य में भी उत्पन्न हो सकते हैं और उनके उत्पन्न करने वाले केवल उसके विचार हैं और कोई नहीं है।

जैसे मनुष्य जिस समय किसी विचार का मनन करता है वह उसका उत्पन्न करने वाला है। मनन करने के साथ ही

उसकी उत्पत्ति के साधन भी पैदा हो जाते हैं। यह काम ब्रह्मा का है और इन सबको काम में लाकर जब वह अपने मनोरथ के चलाने मैं व्यस्त होता है, वह उसका पालने वाला, नियम में रखने वाला और ढंग में चलाने वाले विष्णु हैं। जब वह प्रकृति के परिवर्तन के नियम के आधीन अनावश्यक हो जाते हैं वह इनको बदल देता है, यह शिव का काम है।

संसार का काम इसी प्रकार चलता है। मनुष्य एक काम को सोचकर निकालता है, उससे काम लेता है, फिर उसको समयानुसार बदल देता है, क्योंकि सबेरे से शाम तक शाम से रात तक दुनियां पलटा खाती रहती है। परिवर्तन प्रकृति की जान है। बुद्धि बदलती है शरीर बदलता है। धर्म नए नए रूप धारण किया करता है। सबका नया जन्म हुआ करता है। इससे बचाव नहीं। इसलिए जो बुद्धिमान हैं समय के साथ बदलते हुए अपना काम निकालते रहते हैं। जो पुराने विचारों को लिए रहते हैं वह धोखा खाते हैं। जो आज है,कल न रहेगा। जो कल होगा वह परसों न रहेगा। इसलिए उन्नति के इच्छुक उन साधनों को तलाश करते हैं, उनसे काम लेते हैं, उनमें परिवर्तन करते रहते हैं, जो उनके हित और जीवन को स्थित रखने के लिए आवश्यक हैं। जिस मनुष्य में यह गुण न हों वह मृतक है। जिस जाति में यह बात न पाई जाय, उसका अन्त समय निकट समझो।

हम सब ईश्वर के पुत्र हैं। हम में और उसमें अन्तर है। वह सर्वज्ञ है हम अल्पज्ञ हैं मगर पुत्र होने के नाते हम में पैदा करने, कायम रखने और बदलने की बातें पैदा हो जाती हैं,यदि हम मन की गढ़त करना जान जांय। यह कबीर साहब के बचन का अभिप्राय है। विचार की शक्ति हमारे पाठकों की समझ में आ गई होगी। हम चाहते हैं वह भी कभी स्वयं इस पर विचार

करें। उनका भला होगा। यदि वह मन की गढ़त करना चाहें तो किसी सतपुरुष का संग करें।

विचारों की लहरों को न जानने के कारण हम कभी-कभी अपनी हानि कर लेते हैं। बातें बहुत हैं कहां तक लिखें। केवल दो एक मिसाल से समझाने का यत्न करेंगे।

जब हम किसी मनुष्य से मिलने जाते हैं विशेष प्रकार के विचार अपने मन में पैदा कर लेते हैं। जैसे एक मनुष्य अपने किसी हाकिम के पास मिलने जाता है, वह पहले से सोच लेता है ऐसा न हो हाकिम नाराज हो, क्योंकि वह बार २ ऐसा सोचता है उसका विचार हो जाता है और जहां वह हाकिम के पास गया उसके विचार निकलकर हाकिम के मन पर प्रभाव डालते हैं और उसको नाराज कर देते हैं। यदि वह नाराज न होने वाला होता तो वह अब नाराज जरूर होगा। इसी प्रकार जब हम दूसरों से काम निकालना चाहते हैं तो अधिकतर हमारे विचार ही पहले से सफलता और असफलता का निर्णय कर लेते हैं। क्या हम अपने विचारों पर नियंत्रण नहीं रख सकते ? क्या हम दूसरों पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकते ? अवश्य ढाल सकते हैं। केवल थोड़े दिन मन की गढ़त की आवश्यकता है।

—:o:—

(५) मैं कर सकता हूँ।

प्रकृति जड़ है। हिन्दुओं में सनातन से प्रकृति के लिए "शक्ति" का शब्द प्रयोग करते आए हैं, जिसका अर्थ है कुदरत, ताकत, बल इत्यादि। यह प्रकृति वास्तव में जड़ है। जिसमें चैतन्यता नहीं है, न समझ है न बूझ है, न बुद्धि व ज्ञान है, न विवेक है परन्तु जिस समय इस प्रकृति का आत्मा के साथ

सम्बन्ध होता है वह बड़ी सुन्दरता और चतुराई से सृष्टि की रचना का कर्म करने लग जाती है।

ऊपर जो कहा गया है मिथ्या नहीं है,सार है। आत्मा बिना प्रकृति के कुछ नहीं कर सकता। प्रकृति बिना आत्मा के कुछ नहीं कर सकती। जो लोग स्त्री और पुरुष के सम्बन्ध पर थोड़ी देर के लिए ध्यान देंगे वह हमारे भाव को समझने में भूल न करेंगे।

जिस प्रकार घरेलू काम के लिए स्त्री और पुरुष का मिलाप जरूरी है, उसी तरह सृष्टि कर्म के लिए प्रकृति और आत्मा का संयोग जरूरी है। जब यह दोनों मिल जाते हैं फिर किस तरह रचना के दृश्य दीखने लगते हैं !

हम पहले कह चुके हैं कि प्रकृति सब शक्तियों का भंडार है। पर इस शक्ति के कोष से काम लेने के लिए हमको अपनी आत्म-सत्ता को चलायमान करने की आवश्यकता है। आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी प्रकृति के अनेक स्थूल रूप हैं। इसके इन स्थूल रूपों पर यदि अलग-अलग विचार किया जाय तो यह भी शक्ति के भंडार और साधन ठहरेंगे। क्या तुम नहीं देखते कि इन्हीं में बिजली की शक्ति छिपी हुई है। इनही में वायु की गति है। इनहीं में भाप की शक्ति है। कौनसा विचित्र काम है जो आग, पानी, हवा और आकाश नहीं कर सकते। इनहीं से रेल चलती है। इनहीं की सहायता से बेजान जहाज समुद्र की छाती को चीरता हुआ पानी के ऊपर दौड़ता है। इनहीं के साधन से मनुष्य सैकड़ों मील की खबरें दम के दम में मंगा लेता है। एक नहीं, दो नहीं, हजारों और अनन्त काम हैं। जो बुद्धि-मान मनुष्य इनसे काम ले सकता है, इनमें सब कुछ है। यह सब कुछ हैं। केवल किसी चतुर और बुद्धिमान मनुष्य के काम लेने के अधीन हैं। यह उस समय तक काम नहीं दे सकते जब तक

मनुष्य हाथ न लगावे।

यह उदाहरण जीवन की स्थूल अवस्था में हम सब को देखने में आते हैं। यदि दृष्टि थोड़ी और ऊंची हो जाय तो सूक्ष्म अवस्था में इनके काम और भी विचित्र हो जाते हैं। निर्माण करता इनके यथार्थ ज्ञान को समझ कर अच्छे से अच्छे यंत्रों के आविष्कार करने वाले बन जाते हैं। साइन्स जानने वाला इनके ज्ञान को प्राप्त करके सार को जान जाता है। अध्यात्म वादी सार तत्व को जान कर आत्मिक केन्द्र के और ऊपर को उड़ने लगता है सब कला कौशल, सब विद्या और दस्तकारी का आधार इन्हीं के ज्ञान पर है।

ज्ञान इनमें छिपा रहता है। साइन्स के जानने वाले इनकी निरख परख, अनुभव और खोज के विचार से प्रभावित होकर इनको हाथ लगा देते हैं और यह उसको अपना भेद बता देते हैं। शिल्पकार अपनी कारीगरी दिखाने के विचार से इनसे काम लेता है और यह सुन्दर रूपों में ढल जाते हैं। अध्यात्म विद्या को प्राप्त करने वाला, विचार और अपने भाव के विश्वास से इनसे काम लेता है और यह उसके लिए अपने परदों को हटा देते हैं, ताकि वह सार तत्व की प्रेम-मयी मूर्त्ति का दर्शन कर सके।

यह तीन काम करने के स्थल हैं जो हमने अपने पाठकों के सामने स्पष्ट कर दिए। हिन्दू धर्म स्वयं इतना परिपूर्ण है कि जिसमें कठिनाई से किसी विषय की कमी का अनुमान लगाया जा सकता है। हिन्दुओं में धर्म, अध्यात्म और विज्ञान (विद्या बुद्धि) साथ-साथ चलते हैं। यह सब प्राकृतिक दृष्टि से मिले जुले रहते हैं। भोर से लेकर सायंकाल तक हिन्दुओं के काम काज लगभग सब आध्यात्म और धार्मिक सांचे में ढले रहते थे। पर अब समय आया उनकी विवेक बुद्धि जाती रही। सार का

स्थान असार ने ले लिया। सब जाति की जाति का विध्वंस हो गया। आवश्यकता है उनको धर्म के अन्तर्गत सार तत्व का भी बोध कराया जाय,जिससे वह धर्म के साराँश को भले प्रकार समझकर अपने को उसके अनुसार ढाल सकें और उनमें शक्ति व बल आ जाय। धर्म किसी व्यर्थ या निकृष्ट नियम के पालन करने का नाम नहीं है बल्कि यह बड़ी भारी सचाई है और जिस व्यक्ति को इस सत्य के समझने की आवश्यकता हो वह हिन्दुओं के धर्म को अच्छी तरह से अध्ययन करे।

हिन्दू धर्म की शिक्षा है 'सत्य' शक्ति है 'सत्य' धर्म है 'सत्य' रक्षक है। हिन्दू धर्म बताता है, प्रेम,भक्ति,विश्वास और श्रद्धा। यह सब परम महत्व के भाव हैं। जब कभी यह मनुष्य में प्रगट हो जाते हैं फिर कोई शक्ति इसका विरोध नहीं करती। हिन्दू धर्म सदा हजारों और लाखों वर्ष से शिक्षा देता आ रहा है कि हम सब एक ऐसे नित्य और अविनाशी सत्ता के अंश हैं जो जीवन मरण रहित है, अपार है, अनन्त है, सर्व व्यापक है,अमर है आदि-आदि। जब मनुष्य को उसका अनुभव हो जाता है मृत्यु के भय से वंचित होकर, अविनाशी अनादि जीवन की गोद में विश्राम लेता है और हर प्रकार के भय और चिंताओं से मुक्ति पा जाता है। कौन बेसमझ इस बात से मना कर सकता है कि हम ब्रह्माँडी जीवन की जंजीर की निरन्तर कड़ियां नहीं हैं। यह सत्य है हममें हमारा अस्तित्व और व्यक्तित्व है। पर हैं हम उस अनादि और अविनाशी सम्बन्ध के विचित्र अंश वंश! और कभी उससे पृथक नहीं हो सकते। जिस समय मनुष्य ऐसा समझ ले या अनुभव करले फिर वह अपार सर्व व्यापक और अनन्त जीवन का सच्चा पुत्र या उत्तराधिकारी बनकर उस अटल नियम के ऊपर आ जाता है और स्वयं अटल नियम जैसा ही बन जाता है और प्रकृति की सब शक्तियां आप ही आप

आगे हाथ बांध कर उसके सामने खड़ी रहती हैं। यह हिन्दू धर्म की सर्वोपरि और सर्वोत्तम शिक्षा है, जिसके सत्य होने का संसार कुछ समय पश्चात् अनुभव करेगा और मानेगा। हमको जो हिन्दू हैं, चाहिए कि शब्दों के गोरख धंधे में न फंसते हुए शिक्षा के साराँश और सार तत्व को समझने का भरसक प्रयत्न करें और शक्तिशाली व जीवित रहने का यत्न करें।

शक्ति के संचार पैदा होने का भेद क्या है? इसके अनेक और भिन्न २ उत्तर दिये जा सकते हैं। कोई व्यक्ति कहता है व्यायाम करो शक्ति आवेगी। कोई कहता है धैर्य और संयम से काम लो, शक्ति आवेगी। कोई कहता है विद्या और साधन स्वयं दोनों शक्ति हैं। चौथा व्यक्ति कहता है योगाभ्यास और सोच विचार के साधन में शक्ति है। यह सब सत्य हैं। लेशमात्र भी शंका नहीं, परन्तु यह उस प्रश्न के असली व स्वाभाविक उत्तर कहाँ तक हैं, साधारण बुद्धि का मनुष्य आप स्वयं समझ सकता है। चित्त की एकाग्रता उसका स्थिर होना असली शक्ति है और इस कारण इनमें से अधिकतर बातें साधन और उसके उपाय कहे जा सकते हैं। और सबके सब अपनी २ विशेषता रखते हुए आवश्यक और उपयोगी हैं। क्या आप नहीं देखते जहां विशेष प्रकार की प्रकृति की धारें एक स्थान पर एकत्र हो जाती हैं, वहीं शक्ति प्रगट हो जाती है। बिजली की धारों को एकत्र होने दो, वहां स्वयं प्रकाश, गर्मी और जीवन प्रगट हो जायगा। सारे विश्व में यह सर्व-व्यापक नियम काम करता हुआ दृष्टि में आवेगा। सूर्य क्या है? वह भी जीवन, जिन्दगी की विचित्रताओं का भंडार है। चन्द्रमा क्या है? वह प्रकाश का कोश है। यह ही हाल सब स्थूल जगत का है। हमारे अपने शरीर में देखो! पेट भंडार है भोजन सामग्री और खून आदि का, मस्तिष्क भंडार

है विचारों का। मन संकल्प विकल्प का। मनुष्य शरीर के सब ऊंचे और नीचे कोष जिनका योगियों ने कमल या चक्र के नाम से वर्णन किया है, यह आप स्वयं विशेष प्रकार की योग्यताओं के भंडार हैं। जिस समय मनुष्य को उनके सम्पर्क में आने अथवा उनको छेड़ने और हरकत में लाने, काम लेने का भेद मालूम हो जाता है इनसे विशेष प्रकार की शक्तियों की धार प्रगट हो जाती है। उसके पैदा होते ही पराक्रम के दृश्य दृष्टि में आने लगते हैं, जिनको आजकल 'जीवन', 'जीव' के शब्दों से ठीक २ पुकारा जाता है।

जब पानी को हौज में भर देते हैं अथवा बहते हुये सोते को रोक लगा देते हैं कि वह अपने जल के बहाव को एक स्थान पर रोक दे, आटा पीसने की चक्की चलने लगती है, क्योंकि एकत्र की हुई शक्ति जल के रूप में काम करने लग जाती है। हम बालपन में पतंग उड़ाया करते थे। पतंग क्यों उड़ती है ? क्योंकि दो शक्तियाँ मिलकर काम कर रही हैं। एक तो हमारे अन्तर की एकत्रित शक्ति जो मन की आंख को और हाथ को हरकत दे रही है दूसरे बाहर की वायु। रेल क्यों चलती है ? क्योंकि उसके इंजन में भाप इकट्ठा होकर शक्ति बन जाती है। इसी प्रकार गैस के हौज और बिजली के डायनुमों का हाल समझो। क्या यह झूंठ है ? कभी नहीं। अब ऐसे ही अपने विशेष विचार के सम्बन्ध में विचार करो। हमने अनेक प्रकार से विचार शक्ति के महत्व को समझाने का यत्न किया है। साधू रिसाले में भी बहुत कुछ लिखा है। उदाहरण दे देकर भिन्न २ शब्दों के प्रयोग से अनुमान और प्रमाण से विविध उपायों से समझाना चाहा है कि विचार विश्व में अपना विशेष प्रभाव रखता है। विचार स्वयं एक प्रकार की असीम और अनन्त शक्ति है जो हजारों लाखों और करोड़ों मील की दूरी पर दम के दम चली जाती

है। न बिजली में इसकी सी तेजी है न वायु में इसके समान शक्ति है। जब हम इस विचार के चमत्कार पर ध्यान करते हैं, चकित रह जाते हैं और चौंक कर अपने, निज स्वरूप के लिए जिह्वा से स्वयं पुकार उठते हैं—

अर्थात्:—हे आत्मा ! तेरा रूप खुद दुनिया के तमाशे की जगह है। तू कहाँ तमाशा देखने जाता है !

मेरे प्यारे पाठको ! तुम बिजली हो ! तुम वायु हो ! तुम सब कुछ हो ! यहां भी वही अटल नियम काम करता हुआ दिखाई देता है। विचार की धारें इकट्ठी होकर जमा होती हैं और फिर एक ओर को ध्यान करते हुए विचित्र और अद्भुत शक्ति का चमत्कार बन जाती हैं। योगी या सिद्धि शक्ति के साधक क्या करते हैं ? चित्त की वृत्तियों का निरोध करते हैं। चित्त की वृत्तियों का निरोध क्या है ? मन के विचार जो बार-बार बाहर जाते हैं, इनका रोकना "निरोध" है। जब यह (पूर्णता) सिद्धि प्राप्त हो गई 'संयम' का साधन करने से वह सूर्य का, तारों का, रचना का, अपने निज स्वरूप का और परमात्मा की सत्ता का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। संयम क्या है ? जमा की हुई चित्त की वृत्तियों का एक ओर किसी विशेष दिशा में भेजना और उससे टकराकर एक हो जाना "संयम" है। यह "संयम" केवल समाधि लगाने वाले कर सकते हैं। समाधि क्या है ? जब चित्त की वृत्तियों का निरोध होकर वह एक केन्द्र पर ठहर जाती हैं और बाहरी संसार की ओर से बेसुधी होती है वही "समाधि" है। आप समाधि को समझे कि नहीं ? समाधि में उसी प्रकार चित्त की वृत्तियां लग जाती हैं जैसे जल की धारें अनेक दिशाओं से आकर हौज में इकट्ठी हो जाती हैं। एक जगह जमा हो जाने पर पानी ताकतवर बन जाता है उसी तरह विचार

इकट्ठे होकर महान शक्ति के रूप में बदल जाते हैं और जब किसी विशेष दिशा की ओर उनका रुख कर दिया जाता है वह अपने अस्तित्व (हस्ती) निजरूप को प्रकट कराये बिना नहीं रहते। यहाँ तक कि जब वह बिजली के समान अपना उग्र रूप धारण करके ऊपर की ओर फर २ उड़ने लगते हैं तो वह उस सर्व व्यापक सर्व शक्तिमान के सिंहासन से जा टकराते हैं। उससे और उसमें मिलने के अधिकारी बन जाते हैं। जो कुछ है विचार (ख्याल) है !

सम्भव है आप ऊपर के उदाहरण को भले प्रकार न समझे हों। आइये एक साधारण घटना से आपको इस गुप्त रहस्य के भेद को प्रकट करने का यत्न करें। मान लीजिये आपके मन में भोर में जल्दी उठने का विचार उत्पन्न हो गया है। यह विचार क्या करता है। आपको ठीक नियत समय पर जगा देता है। सूर्य की किरणें संसार को प्रकाश करने को चलीं। इधर आपके विचार ने उसी समय आपके मन में विशेष प्रकार की हल चल करके जगा दिया। आप आँखें मलते हुये जग उठे। आप फिर कहते हैं कि थोड़ी देर और सोलें। पर क्या आप उस घड़ी सो जाते हैं ? थोड़े से मन के परदों में घुस कर देखिये तो सही ! वहाँ क्या तमाशा हो रहा है ? अन्दर ही अन्दर यह मन जो महाराज स्वयं समझा रहे हैं कि उठना चाहिये और आप इस अनुभव से बच नहीं सकते। विवस होकर उठ खड़े होते हैं। ऐसा क्यों होता है ? कौन सी शक्ति आपको जगा देती है ? वह स्वयं आप का विचार है। हे मेरे प्यारे पाठको ! खूब समझ लो तुम आत्मा हो। तुम जीवन हो। व्यक्तिगत जीवन सदा किसी न किसी विशेष रूप की ओर मुड़ जाता है और मोड़ने वाली शक्ति स्वयं तुम्हारा अपना विचार है। रात के समय सोने से पहले थोड़ा अपने मन को कह दो ! बारह बज कर पन्द्रह मिनट पर जगा दो

और ठीक उसी समय पर तुम्हारा नाम लेकर कोई व्यक्ति जगा देगा। यह विचार ही था, जो तुम्हारे मन के उस विशेष घाट पर जो रजागुणी मन कहलाता है, धीरे-धीरे इकठ्ठा होता गया और समय पर एक आश्चर्यजनक तमाशा दिखा दिया। आपने सुन रक्खा होगा विष्णु तप से सृष्टि का पालन करते हैं। ब्रह्मा तप से सृष्टि को पैदा करते हैं। शिव तप से सृष्टि का संहार करते हैं। यह तप और कुछ नहीं है। विचार की सब शक्तियों का एकत्र होकर विशेष दिशा में लग जाने का नाम "तप" है। विष्णु ब्रह्मा और शिव की शक्ति केवल उनका विचार है।

भिन्न-भिन्न धर्म वाले उनके लिये चाहे सो शब्द गढ़लें इससे हानि नहीं, परन्तु हम जिस घाट पर बैठ कर तुमको समझा रहे हैं उसके लिये विचार से अधिक उत्तम शब्द कोई नहीं है। इसको पूरे तौर पर समझ लो। जब तक विचार इकठ्ठा होकर एक जगह जमा नहीं हो लेता और जब तक इकठ्ठा होकर एक दिशा की ओर नहीं चलता, तब तक जीवन के कोई आश्चर्य-जनक कर्म और दृश्य इस जगत में नहीं घटते। ऊपर के उदाहरण से तुम समझ गये होगे कि एक विशेष विचार की धार भीतर ही भीतर सिमिट-सिमिट कर जमा होगई और उसी ने तुमको बिस्तर से उठा कर काम करने के लिये विवस कर दिया।

मैं यहाँ पर जो बात तुमको समझाना चाहता हूँ वह केवल इतनी ही है। आलस्य और सुस्ती का सम्बन्ध प्रकृति से है। और वह यों ही रहता है जब तक कि कोई शक्ति उस पर अधिकार करके या गतिमान होकर उसे चलने के लिये विवश न करदे। यह दशा भी विचार से उत्पन्न होती है। रात का विचार हमको सोने के लिये तैयार करता है। दिन का विचार काम की ओर लगाता है। जब तक एक विचार दूसरे पर अधिकार नहीं कर

लेता तब तक तवदीली नहीं पैदा होती। यह ही नियम रोग के इलाज की दशा में काम करता है। जैसे किसी व्यक्ति के मन में बीमारी का विचार पैदा हुआ। बीमारी किसी न किसी प्रकार गलतकारी का नतीजा है जिसको लोग पाप कहते हैं। इस बदकारी और बदपरहेजी की तह में बीमारी छिपी रहती है। इस कारण आदमी बीमार हो जाता है। पर जब उसको किसी प्रकार स्वस्थ होने का विश्वास दिलाया जाता है, वह विश्वास दवा के रूप में हो या विचार के रूप में, वह अच्छा होने लगता है।

जिस प्रकार पर्वत की ऊँचाई वायु की दिशा को बदल देती है, जिस तरह पर्वत के ढलवाँ किनारे नदियों के बहाव का फैसला कर देते हैं, उसी प्रकार जीवन की धार एक ओर से दूसरी ओर बदली जा सकती है। थोड़ा सा विरोध और मुकाबला करने की आवश्यकता है। तुम अपने मन में समझलो "विचार एक महान शक्ति है"। और इसको समझकर जब किसी काम में लगोगे तो तुम्हारा काम बिल्कुल उसी गति से होने लगेगा जैसे बिजली और भाप की सहायता से रेल और जहाज चलते हैं। सब बातों की बुराई और भलाई का आधार केवल विचार है। स्वास्थ्य के विचार को भले प्रकार समझ लेने वाला अपनी शारीरिक शक्ति को पूर्ण बना लेगा और उसके आस पास के सामान सब उसके सहायक बन जायंगे।

इस बात का विश्वास मन में आजाना कि यह हमारी शक्ति में है और हम ऐसा कर सकते हैं, काम काज में उन्नति की प्रथम सीढ़ी है। जिनमें विश्वास है वह ही वास्तव में सब कुछ कर सकते है। मनोरथ की सिद्धि, ईश्वर का दर्शन, ध्येय की सफलता, सब विषयों में विश्वास का दर्जा पहला है।

तन्दुरुस्ती और सफलता का विचार मन में दृढ़ता से स्थित हो जाना विश्वास है। जिस समय मनुष्य यह समझ लेता है कि मैं कर सकता हूँ उसी समय से इसका नाम सफलता की श्रेणी में लिख लिया जाता है।

इस विश्वास का मन में बस जाना ही विवश होने और न कर सकने की अवस्था पर अधिकार पाना है। इसका हाल बिल-कुल उसी तरह का है जैसे ऊपर के उदाहरण में नींद पर अधिकार करने का वर्णन है। और जब मनुष्य को विश्वास हो जाता है कि मैं एक काम कर सकता हूं उसी समय से उसका जीवन एक विशेष प्रकार की क्रियात्मक शक्ति को अपना लेता है और दिन प्रतिदिन अपने ध्येय और प्रीतम से मिलाप का अधिकारी बनता जाता है। जो मनुष्य किसी प्रकार का आत्मिक अभ्यास कर रहे हों उनसे जाकर जरा पूछ तो देखो कि हम क्या कह रहे हैं और वह तुमको सार तत्व का भेद समझा देंगे। जो बात आत्मिक विषय में सत्य है वह संसारी व्यवहार में भी सत्य है।

तुमने देखा होगा रेल चलाने वाला गाड़ी चलाने से पहले भाप की कुंजी को हरकत देता है। उसी तरह तुम भी यह सोचकर कि "मैं कर सकता हूँ" अपने काम में हाथ लगाते हो। वह भाप की एक जगह जमा की हुई शक्ति को एक विशेष स्थान की ओर फेरता है। तुम अपने विचार की इकट्ठी की हुई शक्ति को एक विशेष ध्येय की ओर फेरते हो। बात एक है काम करने के ढंग में अन्तर है। यह कभी न कहो कि "मैं कुछ नहीं कर सकता।" यह विचार अत्यन्त निकृष्ट हैं। इस पर अधिकार करने का भेद यह है कि अपने मन में पूर्ण रूप में विश्वास करलो, "मैं सब कुछ कर सकता हूं" और तुम्हारा जीवन हर दृष्टि कोंण से उज्ज्वल और सफल बन जायगा। इसलिये धारण

करलो, विश्वास करलो कि तुम सब कुछ कर सकते हो और विचार को एकाग्र करके, स्थिर करके, अन्धकार, दुख, अज्ञान और अविद्या पर अधिकार जमा लो।

यह कठ उपनिषद की वाणी है "उठो, जागो, जब तक सफल न हो जाओ कभी ठहरने का विचार मन में न लाओ।"

हमने "विचार" के महत्व को भले प्रकार से समझा दिया। याद रक्खो ! यह विचार कभी मन में न आने दो कि "मैं नहीं कर सकता" वरन् नींद व आलस्य के गढ़े में गिरोगे।

यदि विश्वास न हो तो इसका भी अनुभव करके देख लो। जिस प्रकार संयमी पुरुष विश्वास करते ही अपने में उत्तेजना और साहस की फुरना का अनुभव करेगा उसी प्रकार वह मनुष्य जो इसके विपरीत सोचता है पराधीनता के बन्धन में फंस जायगा। किसी काम के करने से पृथम दो चार बार, बार बार कहो "मैं नहीं कर सकता" और तुम थोड़े समय में ही देखोगे तुम वास्तव में उसके करने के अयोग्य हो गए। अब थोड़ी देर के लिए अपने शरीर की क्रिया शक्ति पर ध्यान करो। नस नाड़ी में आलस्य भर गया। हाथ कांपने लगे। कंधे झुक गए। पांव कांपते हैं। हृदय धड़कता है। आंखें फट रही हैं। चहरे का रंग पीला है। तुम ही तो थे जो पहले काम के लिए आए थे। पहले क्या हालत थी। शरीर के सब अंग फड़क रहे थे। हाथ काम करने के लिए व्याकुल थे। मन में काम करने की लालसा थी परन्तु अब न्यारी ही दशा है। कारण यह हुआ कि आलस्य या कायरता के विचार ने शरीर को, मन को, मस्तिष्क को, हाथ पांव सबको बेकाम बना दिया। आत्मा और तुम्हारे मन के अन्दर परदा पड़ गया। पहले तुम सीधे अपने आत्मा से विचार की शक्ति ले रहे थे। अब उससे अलग हो गए। आत्मा में अपार शक्ति है। केवल अज्ञान के आवरण

को उठा देना है और विश्वास से काम लेना है। जहां यह दशा हुई ! फिर क्या होता है? तुम शक्तिशाली शाषक और सफलता प्राप्त करने वाले हो जाते हो। यदि तुम सफल होते हो इसका कारण यह है कि तुम में विश्वास और सफलता के विचार ओत प्रोत हैं। यदि तुम असफल हो तो इसका भी कारण यह ही है कि तुमने अज्ञान के वश असफलता, भय व कायरपने के विचार को अपने ऊपर अधिकार करने दिया है। हमारे जाति के जीवन में जो दोष और कमी दिखाई देती हैं वह केवल इसी कारण हैं।

खैर जो हुआ सो हुआ। अब हर मनुष्य को अपना जीवन पलटने की आवश्यकता है। विचार कर लो तुम सब कुछ कर सकते हो। आत्मा क्या नहीं कर सकता। बार-बार इस मंत्र को जपते रहो। यह वास्तव में महामन्त्र है। दो रोज चार रोज अनुभव करके देखो। तुम्हारी दशा अवश्य बदल जायगी। जीवन का रुख बदल जायगा। नस नाड़ियों में शक्ति आ जायगी। जीवन संग्राम में पाँव न कापेंगे और मैदान में डटकर तुम बड़े से बड़े विरोधी कारणों को कुचल कर नष्ट कर सकोगे।

हम और जान के भय से रण को छोड़ दें ! देखा नहीं कि सिंह तराई को छोड़ भागे !

जिस समय मनुष्य ऐसा सोच लेता है कि "मैं कर सकता हूं" वह आलस्य के टीले पर पांव रखता हुआ जीवन के मंडल में आ जाता है और प्राण जो सब शक्ति के भंडार हैं इसको अपनी गोद में ले लेते हैं। वह न केवल सुरक्षित ही हो जाता है बल्कि जो विरोध रोक बनकर उससे टकराते हैं वह उसी तरह चकनाचूर हो जाते हैं जैसे मिट्टी का कमजोर ढेला चट्टान से टकरा कर चूर-चूर हो जाता है। वह सब कुछ कर लेता है। जिस ओर दृष्टि करेगा उसी ओर सारा स्थूल जगत उसके पैर

चूमने को शीश नवाता हुआ नजर आवेगा। प्रकृति माता का लाड़ला ! सत्त पुरुष का युवराज ! परमात्मा का पुत्र ! कौन है जो उससे उसकी बपौती छीन सकता है ! वह उस समय तक दुखी दीन और गरीब है, जब तक असफलता और भूल चूक के विचारों के जाल में फंसा है। जहाँ उसको अपनी निज अवस्था का ज्ञान, आत्म शक्ति का विश्वास और परमात्मा पर विश्वास आया फिर सफलता का आकाश स्वत: ही अवनति और अविश्वास के बादलों से साफ हो जाता है। सूर्य का प्रकाश हर जगह फैल जाता है और वह अपने आपको प्रकाश में देखकर कहता है:—पड़े थे अन्धकार के स्वप्न में हम। सहे जमाने के रंजो ग़म। खुली आंख अपनी जो देखा। यह ग़म ग़लत था यह ग़म ग़लत था।

उपनिषदों ने इस "प्राण" और आत्मा के विषय में कैसी सत्य और श्रेष्ठ शिक्षा दी है। पर हम इतने संसारी बन गये कि सार को नहीं समझते। आप जाल में फंसे और अपने साथियों को फंसा रहे हैं। ऋषि याज्ञवलक्य अपनी स्त्री मैत्री से कहते हैं। "हे मैत्री ! यह ब्रह्म, यह वेद, यह सृष्टि, यह सम्पति अपनी निज दृष्टि से प्यारे नहीं है केवल आत्मा की दृष्टि से प्रिय हैं।" जो पुरुष अपने आत्मा को नहीं समझता ब्रह्म, वेद, सृष्टि और सम्पति आदि सब उससे फिर जाते हैं। और क्या यह सत्य नहीं है ? आत्मा के ज्ञान से रहित लोगो ! हमारे और तुम्हारे पतित होने का कारण केवल यही है कि हम आत्मा और आत्मा की शक्ति का ज्ञान नहीं रखते। जिनको आत्मा की शक्ति का पूर्ण ज्ञान हो जाता है। वह सब पर अधिकार पा लेते हैं। सब जगह उनको आत्मा ही आत्मा दृष्टि में आता है। यह आश्चर्य की बात नहीं है। न शब्दों का गोरख

धंधा है। याज्ञवल्क्य कहते हैं"जहाँ दो हों, वहां दूसरा दूसरे को देखता, सुनता, छूता और सोचता है। पर जहां एक है वहां कोई कैसे किसी को देखे, सुने, छूये और सोचे।" और क्या यह मिथ्या है ? नहीं। जिस समय आत्मा के विचार थरथराने वाली धारों में बाहर निकलने लगते हैं, सब शक्तियाँ दब जाती हैं। यह स्थूल जगत उससे भरपूर हो जाता है। फिर वह किससे सहायता ले। किसका आधीन बने। वह सब कुछ हो जाता है। यह अति महत्व का तत्व है। याज्ञवलक्य फिर कहते हैं "हे मैत्री ! यह आत्मा सोचने समझने और ध्यान करने के योग्य है।"

मेरे प्यारे पढ़ने वालो ! तुम अपनी जाति (कौम) के लाभ के विचार से, साधारण मनुष्यों की दृष्टि से, संसार की भलाई के विचार से इस आत्मा और इस शक्ति पर विचार करना सीखो। अपाहिज सन्यासियों की भांति न विचारो। सार तत्व (असलियत) की ओर दृष्टि करो और इस लेख के पढ़ने के बाद ही मन में दृढ़ विश्वास करलो कि "आत्मा सब कुछ है, आत्मा सब कुछ कर सकता है, आत्मा के साथ किसी को विरोध और रोकने की शक्ति नहीं है।" और तुम इस विवेक विचार से अपने आपको शक्ति और ज्ञान की पवित्र गंगा में स्नान करते हुए पाओगे। जहां अज्ञान का मैल दूर हो जाता है, सत प्रकाश की झलक आ जाती है। सुख चैन और आनन्द का जन्म सिद्ध अधिकार जो हमारी बपौती है मिल जाता है। सत्य, तेज, सुन्दरता, सच्चे ज्ञान आदि से तुम परस्पर मिलोगे। कायरता, असभ्यता, अज्ञान, साहस हीनता जिनके कारण तुम दुखी व बदनाम हो रहे हो स्वतः ही दूर हो, जायेंगे। मैंने सत का उज्जल दृष्टि कोण तुमको दिखा दिया। अब कभी न कहो "मैं यह नहीं कर सकता" बल्कि आत्मा के यथार्थ ज्ञाता के समान

हजारों को सुनाकर कहो "मैं सब कुछ कर सकता हूँ।"

"कर सकने' का मन में विश्वास होना,अपने पाँव आप खड़े होने और अपने ऊपर भरोसा रखने का नियम है। जो इस प्रकार समझता है वह आत्मसंयमी बनता है। अपने भुजबल पर भरोसा रखना उच्च शिष्टाचार व सभ्यता के सर्व श्रेष्ठ चिन्ह हैं। किसी की सहायता के आश्रित न बनो। आत्मा किसी के आश्रय नहीं है। सुनो ! बुलबुले शीराज एक फार्सी कवि का कैसा जोरदार कथन है जिसका अर्थ है :—"खुदा की कसम पड़ोसी की मदद लेना स्वर्ग में भी नर्क के समान है।"

टेनसन इंगलेंड के महान कवि का वाक्य है :—

अपना मान आप करना, अपने निज स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करना, अपने आपको नियन्त्रण (Control) में रखना, यह तीन बातें मनुष्य के जीवन को अपूर्व बल व समराज्यधिकार देते और अग्रसर करते हैं।

और यह तीनों उस पुरुष में मौजूद हैं जो कहता है "मैं कर सकता हूँ"। नवयुवकों को इन तीन महान् उपरोक्त गुणों को अपने में पैदा करना चाहिये। वह इस महामंत्र को नित्य प्रति बिना भूल के जपा करें, "मैं कर सकता हूँ"। यह न कहो कि "मैं जानता हूँ, मुझको जरुरत है और मेरी यह इच्छा है" बल्कि यह कहो कि "मैं कर सकता हूँ"। मुझ में अपनी जरुरत आप पूरी करने की शक्ति है। इच्छा के अनुसार सफलता प्राप्त कर लेना मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है। जो मनुष्य बार २ ऐसा कहता रहेगा, बार २ इस तरह सोचता रहेगा, वह किसी समय में न केवल आप ही बन्धन से छुट जायगा बल्कि हजारों लाखों और करोड़ों को मोक्ष का देने वाला, निर्वाण दिलाने वाला और परोपकार करने वाला बनेगा। ब्रह्माँडी शक्ति उसकी है। वह ब्रह्माँडी शक्ति का है। वह अपार शक्ति उसको अपने प्रकट

करने का यंत्र बना लेती है। यह वेदाँत का सिद्धाँत है। उपनिषदों की शिक्षा का सार है। गीता के उपदेश का मूल है। मेरे नेक और आदरणीय पढ़ने वालो इसको अपने मन में धारण करलो और भला होगा।

ईश्वर से प्रार्थना है कि आप सब प्रकार अपने जीवन को सत के साँचे में ढाल सकें!

—※:※—

(६) महत्वपूर्ण आवश्यक बातें

संसार भिन्नता के दृश्यों का स्थल है। यहाँ कोई दो सूरतें कभी एक सी न दीखेंगी। न दो मनुष्य एक विचार के मिलेंगे। जब एक वृक्ष के दो पत्ते आपस में नहीं मिलते, हाथों की उंगलियाँ एक सी नहीं, तो संसार के और दृश्यों में एकता खोजना भूल है। क्या नहीं देखते एक व्यक्ति का हाल दूसरे से भिन्न है और इस भिन्नता के कारण उनके दृष्टि कोण में भेद होना आवश्यक है। यही कारण है कि ऋषियों ने प्राचीन समय में मनुष्य के विश्वास और विचारों की भिन्नता पर कभी दोषारोपण नहीं किया, बल्कि उनको अवसर दिया कि वह अपनी चित्त वृत्तियों की इच्छा के अनुसार अपनी शारीरिक व आत्मिक उन्नति की गुत्थी को आप सुलझायें और अपने दृष्टि कोण के अनुकूल कार्य करें। मनुष्य की उन्नति और अवनति का आधार अधिकतर इस बात पर है।

शरीर की इन्द्रियाँ वास्तव में आत्मा की खिड़कियाँ हैं और बाहरी जगत उसके विचारों की छाया है। यह संसार नाम और रूप से अधिक मान नहीं रखता और मनुष्य का मन और मस्तिष्क अपनी उन्नतिशील बुद्धि और निजी समझ के अनुसार उस सार तत्व के सम्बन्ध में अपना निर्णय दिया करते हैं।

इसलिये हर व्यक्ति के लिये नितांत आवश्यक है कि दूसरों पर पूर्णतः भरोसा रखने के बदले अपनी निजी राय को भी दृष्टि में रक्खे, जिससे उसकी बुद्धि की जाँच के अतिरिक्त उसको अपने जीवन के उद्देश में भी सफलता होती जाय। हम अपने चक्र के केन्द्र पर स्वतः ही मनुष्य रूप में खड़े हैं। इस कारण केवल दूसरों की राय या सम्मति पर नितांत निर्भर रहना भूल है। आखिर हम क्यों दूसरों के निर्णय या सम्मति के आधीन बनें। हम भी तो मनुष्य हैं और मनुष्य के नाते हमको भी तो बुद्धि विवेक प्राप्त है। इस अपनी बुद्धि विचार को व्यर्थ बनाना क्या किसी दशा में अच्छा काम है ? नही, कभी नहीं।

विचारों का तबादला होता रहना अच्छी बात है। ऐसा अवश्य होना चाहिये। हर प्रश्न के भिन्न २ दृष्टि कोण हुआ करते हैं और ऐसी दशा में उनकी निरख परख करना, औरों की सम्मति लेना, परम लाभकारी है। विशेषतः सामाजिक और निजी सम्बन्ध में ऐसे अवसर अधिक होते हैं जिनकी बाबत औरों को सम्मति लेते रहना लाभदायक सिद्ध होता है। यह संसार उन्नति का स्थल है। भगवान श्री कृष्ण इसको कर्म क्षेत्र वर्णन करते हैं। यदि किसी को अपनी उन्नति का ध्यान है तो उसको चाहिये कि दृढ़ता और संयम से आप एक स्थान पर आरूढ़ हो रहे। जमकर बैठ जाय ! कभी कभी जीवन पथ की मुख्य २ श्रेणियों को अकेला ही पार करे। राजा के समान स्वतन्त्र रहे और आवश्यता अनुसार जहाँ कभी जरूरत हो, मेल मिलाप के सम्बन्धों को भी अभय होकर तोड़दे। यूरुप में एक कहावत प्रसिद्ध है "सुनिये सबकी, करिये अपने मन की" और फिर कहा है "अपनी करनी पार उतरनी"।

सदा हर बात में दूसरों की राय के आधीन रहना भारी

कायरता और अपराध है। इससे व्यर्थ समय नष्ट होता है। तर्कवितर्क करना पड़ता है। बार बार एक ही बात सबको सुनना होती है और अपने हृदय का आँचल अकारण काँटों में उलझ कर टुकड़े २ हो जाता है।

जो लोग अपने इस मन की आदत के आधीन हैं अपना बहुत सा समय योंही व्यर्थ खो देते हैं। संसार में जो मनुष्य सफलीभूत होते हैं वह सबसे अधिक अपने समय का आदर करते हैं। और चीजें चाहे नष्ट हो जाँय, रुपया पैसा जाता रहे, वह इनके व्यर्थ के खर्च करने से नहीं घबराते। पर समय के खोने से उनको महान कलेश होता है। उनका भरोसा अपने भुज बल पर होता है। वह समझते हैं अपने निजी हानि लाभों के प्रति दूसरों को क्या समझ है! हम ही अपने भविष्य को अपनी कोशिश से अच्छा और श्रेष्ट बना सकते हैं। इस प्रकृति के मनुष्य चारों ओर देख कर अपने चित्त को स्थिर कर लेते हैं और अपने अन्दर देख कर, सोच कर, समझ कर खुद अपने लिए रास्ता निकाल लेते हैं।

जीवन हमको इसलिए मिला है कि हम बराबर उन्नति के मार्ग पर पांव रखते हुए चले जांय और नित्य प्रति हमारी अवस्था में नए परिवर्तन पैदा हों। हम निज गौरव के आशय को समझ कर अपने आप को भव्य व्यक्तित्व के रूप में बदलते जाँय। हमारी दृष्टि में औरों की बात का इतना महत्व नहीं है जितना अपनी बुद्धि और विवेक का है। तुम भी कभी न सुनो। न किसी प्रकार की प्रामाणिक बातों को सच्ची मानो, जब तक अपने अनुभव की कसौटी पर न परखलो। प्रामाणिक बातें एक ओर धरी रह जाती हैं। विवेकी पुरुष अपना काम यों ही बना लेता है। अपनी बुद्धि विचार ही उन्नति की असली नींव हैं और अंत में वह इस प्रकार स्वतः प्रमाण बन जाती हैं कि फिर

उसके अनुभव की काट छांट में पुस्तकीय ज्ञान बालों की दलीलें और धार्मिक रीति रसम पोच जंचने लगते हैं। जिनको इस प्रकार के काम करने अथवा साधन से सम्बन्ध रहा है, चाहे लोक के हों या परलोक के, शारीरिक हों या आत्मिक, वह भले प्रकार से समझ लेंगे कि हम क्या कह रहे हैं।

मगर साधारण मनुष्यों में यह बात नहीं होती क्योंकि यह कठिन परिश्रम, यत्न, साधन और करनी का विषय है। साधारण बुद्धि विवेक के लोग सदा इस परिवर्तन को पसन्द नहीं करते:—

लीक पुरानी ना तजें, कायर कुटिल कपूत।
लीक पुरानी परिहरें, शायर सिंह सपूत ॥

अर्थ स्पष्ट हैं। शायर सिंह और सपूत पुरानी लीक नहीं पीटते। अपने लिए नया रास्ता बना लेते हैं।

धार्मिक नए ढंगों के प्रचार में भी विरोध का भारी हुल्लड़ मच जाता है क्योंकि साधारण बुद्धि के लोग उस सीमा तक नहीं पहुंच पाते जो एक उपदेश का आशय होता है। वह बात-बात पर कहते हैं कि क्या पुराने लोग अयोग्य थे, जिन्होंने यह नियम बनाए थे। हम उत्तर देते हैं वह अयोग्य नहीं थे, किन्तु वह समय और था तथा यह समय और है। अब समय की आवश्यकता भी और है, परन्तु क्या कायर कुटिल कपूत कभी मानने वाले हैं। सार और नए विचारों से उनको चिड़ रहती है। फिर भी हम देखते हैं जिन में असलियत है, उसका प्यार है उसका आदर है। कायर,कुटिल और कपूतों की अपेक्षा शायर, सिंह और सपूत के समान अपना काम बना ही लेते हैं और नीची श्रेणी से ऊपर आकर सूर्य के समान चमक उठते हैं। ऐतिहासिक घटनायें ऐसे उदाहरणों से भरी पड़ी हैं। जिस उत्साही सफलीभूत पुरुष के जीवन को ध्यान देकर पढ़ोगे

वहाँ ही तुम्हारी तृप्ति का सामान मिल जायगा।

इनको सफलता मिल गई क्योंकि इन में उन्नति व उपज कीसामग्री प्राकृतिक,स्वाभाविक और सांसाकारिक रूपसे मौजूद थीं। इनके विचारों ने संसार में हलचल पैदा कर दी और आप परिश्रम कर के उसके जान प्राण बन गए और कुछ न कुछ परिणाम दिखा कर छोड़ा। इन में अपने भुज बल पर विश्वास और भरोसा था। उनको अपने मन के भावों पर अंकुश था और स्थिर चित्त थे।

विश्वास का होना आवश्यक है। मनुष्य क्यों किसी पुरुष की राय लेने जाता है? क्योंकि उसको अपने भुज बल पर भरोसा नहीं है। यह उसके संकोच का कारण है। कभी-कभी यह दशा अच्छी भी कही जाती है क्योंकि जिनको अपने ऊपर बहुत भरोसा रहता है वह बिल्कुल बेपरवाह भी बन जाते हैं। इस प्रकार की बेपारवाही को हम नासमझी कहते हैं। पर यदि हम से पूछा जाय तो हम उस उदासीन और अपने ऊपर बिल्कुल भरोसा रखने वाले को उन मनुष्यों से हजार बार अच्छा समझेंगे जो सुस्त, आलसी कायर और पराधीन हैं। उदासीनता का काम इस आलस्य और काहिली की दशा से हजारों दर्जे अच्छा है, जो भय के भूत के कारण आगे बढ़ने में सकुचाते हैं। क्या बहता पानी ठहरे हुये जल से अच्छा नहीं है? "साधू चलता रहे तो बहतर। नदी जल बहे तो बहतर"॥

प्रकृति पुकार २ कर कह रही है। बढ़ो, आगे चले चलो! पाँव पीछे न पड़े। इस पुकार के सुनने वाले पग उठाये धड़ाधड़ चले जा रहे हैं। जो राह में रुक गये, कुत्तों के समान औरों के पाँव की ठोकरों से बे मौत मरे। इस दुनियाँ में अनन्त उन्नति के दर्जे और घाट हैं। हर प्रकार की क्रिया कही न कहीं तुमको पहुँचा कर छोड़ेगी। काम करने में तुम्हारी कोई भी हानि नहीं।

यदि काम के करने में कभी गिर भी पड़ो तो कोई हर्ज नहीं। पर रुको नहीं, चलते चलो। अन्त में कहीं अवश्य पहुँच कर रहोगे। तुम्हारी बिल्कुल हानि न होगी। कबीर सा० की वाणी है:—

मारग चलते जो गिरे, ताहि न लागे दोष।
कह कबीर बैठा रहे, ता सिर करें कोस।।

हर प्रकार के रास्तों में ऐसी आफतें पैदा होती हैं। गिरते पड़ते हुए तुम सहज में अपने चलने को ठीक करते चलोगे, क्योंकि उसने अनुभव जागेगा, धैर्य धरने की शक्ति आवेगी। संसार में हर जगह गिरना और उभरना है। जीवन के उत्तम और पवित्र बनाने के लिये इस बात की अधिक आवश्यकता है कि तुम गिर-गिर कर उठते रहो। बालक गिर-गिर कर आगे चलने फिरने की शक्ति प्राप्त कर लेता है। इस दुनियाँ में हजारों लाखों और अनन्त लाभ के बहुत से साधन मौजूद हैं। केवल तुम्हारे इच्छा करने की जरूरत है। जहाँ इच्छा उत्पन्न हुई तुम स्वयं फलने फूलने लग जाओगे। उन्नति के करोड़ों मार्ग मौजूद हैं। अनन्त साधन ऊंचे उठाने को हर समय सामने हैं। यह सबके सब केवल तुम्हारे लिए हैं, यदि तुम इनसे काम लेने और अपने ऊपर भरोसा रखने के भेद को समझ लो। इस सत्य को भले प्रकार समझ लो। जहाँ बहुत अधिक बाद विवाद का बाजार गरम होता है वहाँ सफलता प्राप्त करने की इच्छा नहीं होती। अपने आप को कमजोर न समझो। न बालकों के समान पुराने प्रमाण दो क्योंकि समय बदलता है। हालात बदलते हैं। काम करने के ढंग बदलते रहते हैं। निर्बल विचारों को कभी निकट न आने दो।

परस्पर का सहयोग और सहायता अति आनन्द की वस्तु है। यदि अन्य व्यक्ति तुम्हारे काम में शरीक होते हैं तो क्या कहना

है ? पर कभी-कभी औरों की सहायता नहीं भी मिलती। ऐसी अवस्था में किसी की कुछ चिन्ता न करो। अपनी राह लगो। सम्भव है लोग तुमको पक्षपाती कहें परन्तु क्या परवाह है ! व्यर्थ के बकवाद करने वाले सदा ऐसा ही करते चले आये हैं। क्या तुम नहीं देखते कि दुनिया के बहुत से मामलों के परिवर्तन केवल एक-एक व्यक्ति के अकेले परिश्रम के परिणाम थे। आदि में किसी ने भी उनका साथ नहीं दिया। पर जब काम का सिलसिला चल निकला, हजारों लाखों मनुष्यों ने उनको अपनाना शुरू कर दिया और उनके बचनों को विश्वास के साथ सत्य माना।

अपने काम के सिलसिले में हमको औरों के पसन्द आने न आने की इच्छा होती है। पर यह व्यर्थ का भम्र है क्योंकि न उनकी दृष्टि में हमारे समान उदारता है, न उनके मस्तिष्क में उच्च विचार हैं। शिक्षा व उसके लाभ को न जानने के कारण वह उस समय तुम्हारे विचारों को भी अच्छी तरह न ले सकेंगे। हाँ उनको हमारी प्रशंसा करने के शब्द सुनकर, हमारा साहस किसी अंश तक अवश्य बढ़ता है, पर उनकी चापलूसी की बातों की तरफ तुम अपना ध्यान न दो। खुशामद पसन्दी की आदत बहुत बुरी है। इसकी हवा भी न लगने पावे। आवश्यकता केवल इतनी है कि तुम को अपने भुजबल पर पूरा-पूरा भरोसा रहे। मनुष्य को उदार बनना चाहिये। जिस से वह अपनी दुर्बलता और दृढ़ता को आप समझ सके। यदि यह दशा नहीं है वह धोखा खा जायगा।

सफल व्यक्ति खूब जानते हैं कहां कहना चाहिये और कहां चुप रहना चाहिए। वह गपशप में समय को नहीं खोते, बल्कि स्वयं सोच समझ कर और परिणाम को देखकर एक राय कायम कर लेते हैं।

यहां इतना और स्पष्ट कर देने की आवश्यकता है कि कोई व्यक्ति बाहरी मदद की अवहेलना भी न करे। ठीक ढंग से सम्मति अवश्य ले। पर इस सम्मति की जाँच अपने मस्तिष्क की शक्ति से अवश्य कर लिया करे। हर बुद्धिमान मनुष्य में दो गुण जरूर होते हैं। एक तो वह विद्यार्थी के रूप में औरों से पाठ पढ़ा करता है। दूसरे सिखाता भी रहता है। वह सेवा भी करता है और कराता भी है। इसमें नम्रता भी रहती है और मान का ध्यान भी रहता है। इसकी दृष्टि बाहर भीतर दोनों ओर रहती है।

सफलता के हेतु हर मनुष्य को अपनी मस्तिष्क शक्ति और उसके अपार गुणों की समझ रखना आवश्यक है, पर अपनी कमजोरियों की ओर से आंख मीचना भी शोभा नहीं देता। हर मनुष्य में गुणों के साथ अवगुण भी रहते हैं। यदि थोड़ी देर के लिए इसको दृष्टि में भी न रक्खा जाय तो याद रहे मनुष्य सब गुणों को एक दिन में प्रगट नहीं कर सकेगा। हर काम के लिए समय की आवश्यकता है।

धैर्य और सन्तोष विशेष रूप में मनुष्य के सद्गुण हैं। असंतोष अकसर असफलता का कारण होता है। यदि संतोष और धैर्य्य से काम लिया जाय तो इसमें संदेह नहीं कि बड़ा उत्तम परिणाम पैदा हो सकता है, परन्तु समय का इन्तजार फिर भी करना ही पड़ेगा।

यदि तुम किसी मनुष्य से अपने भविष्य की कामनाओं और इरादों को कहते हो, तो उसके साथ इतना पहले ही से और समझ लो कि वह तुम्हारी भविष्य की उन्नति के विचार का, तुम्हारे भूतकाल के कर्म और स्वभाव अथवा चाल चलन से अवश्य ही अनुमान लगावेगा, क्योंकि उसको क्या पता है कि अब तुम्हारा मन उदार साधनों का भंडार है। उसकी दृष्टि

अन्दर की ओर कभी न जायगी। इस कारण सदैव और हर काम में सलाह लेना भूल है। तुम्हारा मन और मस्तिष्क भविष्य की उन्नति के कर्तव्यों के भारी भंडार हैं। इसको तुम ही खूब जान सकते हो। दूसरों को इसकी क्या खबर है! सम्भव है तुम आने वाली उन्नति की सूरत की झलक देख सको परन्तु दूसरे व्यक्ति की दृष्टि केवल बीती हुई दशा पर रहेगी।

गपशप करना अच्छा है। इससे समय खूब कट जाता है। मन भी बदल जाता है लेकिन इससे अभ्यास और साधन से कोई सम्बन्ध नहीं है। कभी इस आदत से साहस का अभाव हो जाता है और मन और चित की शक्ति जिभ्या पर आकर उसी तरह नष्ट हो जाती है जैसे खत रखते समय कलम का सिर खट से कट जाता है और उससे अलग हो जाता है।

अपने निजी अनुभव और अनुमान पर विश्वास करो। जिन बातों को तुमने सोच लिया है उनका भरोसा करो। बुद्धिमानी और साहस के साथ समय को व्यर्थ नष्ट किए बिना काम में लग जाओ। फिर देखो क्या होता है! यह नियम है। एक अवस्था के बाद दूसरी अवस्था अवश्य बदलती है। जो काम तुमने अभी खतम करने के इरादे से हाथ में लिया है उसका अन्त यहाँ ही तक होकर न रहेगा। तुमको इससे कहीं श्रेष्ठ काम करने को मिलेंगे। हमको केवल इतना करना है कि जिस काम को हाथ लगाया है उसको अन्त तक पहुंचा दें। तुम्हारा मस्तिष्क इस कार्य के साथ उदार होता जायगा। और पवित्र विचार धारण करने के हेतु तुम्हारे समीप उपस्थित किये जायेंगे। देर न करो आज का काम कल पर न छोड़ो। यदि इस प्रकार काम होता रहेगा, तो तुम सीढ़ी से सीढ़ी ऊंचे जीनों पर सहज में पांव जमाते हुए चढ़ जाओगे और बिना कठिनाई के सफलता प्राप्त कर लोगे। मानुषी विचार, मानुषी कर्म और उसकी मन पसंदी

की कभी भी अवहेलना न करो। इस पर खुद अभ्यास करो और औरों को अभ्यास करने की रुचि दिलाया करो। हम सब आत्मायें हैं। जिनको तुम पतित समझते हो, वह भी आत्मा हैं। समय आवेगा जब इसके आवरण उतरेंगे और वह भी आत्मा के तप तेज में चमक दमक के साथ जगमगा उठेंगे।

ज़र्रे का भी चमकेगा सितारा। क़ायम जो ज़मीनो आसमां हैं।

—※:※:※—

(७) राग द्वेष

यदि किसी व्यक्ति से द्वेष रखते हो तो याद रक्खो वह तुम्हारे ही पास लौटकर आवेगा। और जितनी तुम औरों की बुराई चाहते हो उतनी ही तुम्हारी हानि होगी। तुम्हारे विचार बुरे होंगे, मन मलीन होगा और तुम्हारा अपना जीवन बिगड़ जायगा। घरों में जब लड़ाई झगड़े होते हैं तो स्त्री पुरुष एक दूसरे से बोल चाल बन्द कर देते हैं। उनसे पूछो कि क्या द्वेष का घाव तुम्हारे मन को चोट नहीं पहुंचा रहा है! कितने मनुष्य हैं जो इस बुरी आदत से दुखी हैं। द्वेष करने से मनुष्य की मन और मस्तिष्क की शक्ति को महान धक्का पहुंचता है और उसको मनुष्यता से गिर जाने का भय रहता है।

उचित है कि जो तुमसे द्वेष रखते हैं तुम उनको प्यार करो। तुम्हारा जीवन इससे सुन्दर बनेगा, चित प्रसन्न रहेगा और तुम देवता बनते जाओगे। (हसद) ईर्ष्या से बचो। यह तुमको कुरूप कर देगा और मन को अपवित्र बना देगा। प्रेम और प्यार से, प्रेम के विचार तुम्हारी ओर आवेंगे और तुम्हारे मन को निर्मल और पवित्र बना देंगे। जीवन सुख पूर्वक व्यतीत होगा। नहीं मानोगे तो इसके विपरीत फल भोगोगे। कबीर साहब की

वाणी है:—

जो तोको काँटा बोये, ताहि बोय तू फूल ।
तोको फूल के फूल हैं, वाको हैं त्रिसूल ।

—※:※—

(८) परीक्षा और कष्ट

जिन बातों को संसार में हम जाँच और परीक्षा समझते हैं अथवा जिन मामलों को हम दुखों और कष्टों का नाम देते हैं वह वास्तव में एक प्रकार की दैन है, जो हमारी आगामी उन्नति के लिये नए सामान उत्पन्न करेंगे। यह हमारी अत्यन्त भूल और कायरता है जो हम उनसे मुख मोड़कर भयवश भागने की चिन्ता में रहते हैं। किंचित हमारी दृष्टि ऊंची होती ! यदि हम उस अटल नियम को जानते होते, जो जीवन की निरन्तर जंजीर को चलायमान करता रहता है और यदि हमको अपनी दशा, अपनी योग्यता, अपने निजी आस्तित्व के परिवर्तन के भेद का ज्ञान होता, तो यह कष्ट, कष्ट न प्रतीत होते। हम इनको ईश्वरी दैन समझते और इनसे परस्पर मिलने को सहर्ष तत्पर हो जाते। अज्ञान और अविद्या ने बन्धन और संकीर्णता (तंग ख्याली) के जाल चारों ओर तान रक्खे हैं। आत्मा स्वतः ही मुक्त है। जहां कहीं और जब कभी तंग दिली के आवरणों या परदों के उतरने या उतारने का समय आता है, उथल पुथल और झकोले खाने का सामान पैदा हो जाता है और कष्टों से भुठ भेड़ होती है। बन्द कली को चटखना है। वह बिना खिले न रहेगी। उसका चटक कर खिलना ही प्रथम चरण है, जब ही फूल बन कर सुगन्ध देगी ! बीज के रूप में छिपे वृक्ष को, परदों को फाड़कर खुली वायु के मैदान में आना है। इसका

परदा फाड़ना ही वृक्ष के भविष्य को प्रगट रूप में उज्वल करके उपस्थित करना, प्रथम चरण है। इसी प्रकार जितने कष्ट और दुख होते हैं, जितनी आपत्ति विपत्ति भोगी जाती हैं, वह प्रकृति के अटल नियम में उन्नति और सुधार के सर्वोपरि और श्रेष्ट साधन हैं। जब किसी जाति के उन्नति के परमाणुओं में फैलने व बढ़ने की शक्ति आजाती है फिर वह रोकने से नहीं रुकती। न उसको काई कैद कर सकता है, न जंजीर और बेड़ी डालकर जकड़ सकता है। यह ही हाल व्यक्तिगत रूपसे मनुष्यों की उन्नति का समझना चाहिये। उन्नति का नियम एक एक है। दो बातें नहीं हैं। केवल जाति भेद है। चर, अचर, पशु, मनुष्य, देवता महात्मा इत्यादि में हर जगह उसके नियम में समानता दिखाई देगी और यह उन्नति या सफलता के परमाणु कहीं बाहर से नहीं आते हैं, बल्कि हम में आदि से मौजूद हैं।

बालक माता के उदर से बाहर आता है। अंधेरी कैद के बाहर आता है। आते समय उसको दुख की अवस्था से गुजरना पड़ता है। इस कारण वह पैदा होते ही रोने लगता है परन्तु उसने उन्नति प्राप्त करली। इसी प्रकार जब उसके दाँत निकलने लगते हैं, उन्नति की दूसरी अवस्था आती है। इसमें भी उसको दुख होता है। इसी प्रकार जब वह बढ़ने लगता है तब वह पतला हो जाता है पर वह उन्नति के मार्ग में है। यहाँ तक मनुष्य की स्वाभाविक गति इस प्रकार काम करती है कि अधिक कष्ट सहन प्रतीत नहीं होता क्योंकि बालापन में तंग ख्याली या संकीर्णता नहीं रहती। इससे आगे मनुष्य को नये नये उत्तरदायत्वों से काम पड़ता है। प्रकृति या स्वभाव तो अपना काम करना ही चाहेगा परन्तु यह अल्पज्ञ और तंग ख्याल बनकर अकुलाता है और व्यर्थ के बंधन में पड़ता है।

किंचित इसकी गति वैसी ही होती जैसी आदि में शुरू हुई थी, तो कभी व्याकुल होने का अवसर न आता। वह काल की गोद में जाते समय भी खुश रहता, क्योंकि मृत्यु या काल नाश हो जाना नहीं है बल्कि अमर जीवन के द्वार की कुंजी है।

तितली की जीवन व्यवस्था का,जिसको आप इतनी सुन्दर और वृक्षों के फूल पत्तों से खेलते देखते हो, एक अति मनोहर इतिहास है। प्रथम अंडा पैदा होता है। अन्डे से कुरूप कीड़ा निकलता है जो अन्डा तोड़ने के परिश्रम के कारण काँप रहा है। यह कीड़ा कुछ दिनों तक यों ही रेंगता रहता है किन्तु थोड़े ही दिनों के बाद इसमें विशेष प्रकार की शक्ति आ जाती है। देखो जब परिश्रम करके उस कुरूप परदे को फाड़ देता है, नन्ही सी सुन्दर तितली काँपती हुई बाहर आ जाती है और फिर अपने मनोहर और मोहने रूप में उड़ती हुई गुलाब की की पंखड़ियों पर नाचने लगती है। आप देखकर चकित व आनन्दित होते हो। तितली का यह मनोहर हेर फेर केवल परदों के उतरने से हुआ और उसको ऐसी हालतों से गुजरना पड़ा है जिनको हम और आप भूल से परीक्षा, जाँच और कष्ट कहते हैं।

कौन व्यक्ति है जो परदों के हटाने का इच्छुक न होगा ? परन्तु यह परदे उस समय तक कैसे उतर सकते हैं, जब तक जीव हाथ पाँव न मारे। परदे बिना उतरे हुये रह नहीं सकते। आत्मा स्वाभाविक ही मुक्त है। कौन है जो उसे बन्धन में रख सके, किन्तु हम जो अज्ञान के अनेक परदों से ढके हुए हैं व्यर्थ और बिना जरुरत घबराते हैं। कल्पित मानसिक कष्टों की चिंता गले का हार बन जाती है और हम अज्ञानवश मुक्ति के विशाल क्षेत्र और खुली वायुमें सैर करने से झिझकते हैं। यदि हम थोड़ा

भी अपने निज स्वरूप का ज्ञान रखते होते, तो यह दशा कभी न होती। प्रकृति को अपने अनुकूल बना कर बालक व तितली के समान एक सीढ़ी से दूसरी सीढ़ी पर उछलते और कूदते हुए चढ़ जाते और शान्ति के साथ अपने मनोरथ को प्राप्त कर लेते। हम अज्ञान के वश हैं, इन्द्रियों के आधीन हैं और वह जिधर चाहते हैं नाच नचाते हैं। कृष्ण भगवान का उपदेश है:– "मनुष्य इन्द्रिय विषयों का ध्यान करता है। उनसे नाता जोड़ लेता है। इस सम्बन्ध से इच्छा पैदा होती है, इच्छा से क्रोध उत्पन्न होता है, कोध से भ्रम होता है, भ्रम से स्मरण शक्ति नष्ठ हो जाती है। स्मरण शक्ति के अभाव से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। बुद्धि भ्रष्ट होने से वह नष्ट हो जाता है लेकिन जिसने अपने मन में संयम कर रक्खा है, वह इन्द्रियों के भोग-विलास में रहता हुआ भी उनके राग द्वेष के जाल में नहीं आता और आत्मवस्था की दशा में आकर शांति को प्राप्त कर लेता है। शांति से उसके सर्व दुक्खों का नाश हो जाता है और बुद्धि दृढ़ रहती है।"

(भगवद् गीता अध्याय २ श्लोक ६२, ६३, ६४, ६५)

यह सार है जिसका हृदयांकित कर लेना हमारे लिए परम उपयोगी है।

मनुष्य के सब कष्ट केवल अज्ञान के कारण हैं। इसको यदि यह प्रतीत हो जाय कि वह सृष्टि का रचने वाला है और उसके नियम पर अपना अधिकार जमा सकता है, तो फिर उसके लिए सदा को दुख और कठिनाई का अंत हो जाता है।

सृष्टि का उद्देश्य उन्नति है। जो व्यक्ति जिस प्रकार की उन्नति के विचार को अपने मन में धारण कर लेता है, उसको उसी श्रेणी की मुक्ति प्राप्त हो जाती है। जिसको जितना ज्ञान होगा, उसके बंधन में उतनी ही कमी आजायगी। जो अपने अंतर के ज्ञान और बुद्धि से जितना काम लेगा उतना ही प्रकृति

उसकी पाठ पूजा का दम भरेगी।

लड़के मदरसे में पढ़ रहे हैं। उनकी उन्नति हो रही है। सांइस जानने वाला नए २ आविष्कार और नए यंत्र निकालने की धुन में है। वह प्रकृति के गुप्त भेद को जानकर उस पर अधिकार पाने का यत्न कर रहा है। कलाकार, मेमार, डाक्टर, हकीम सबका पथ आगे की ओर बढ़ रहा है परन्तु उनकी उन्नति की कहीं भी सीमा नहीं, जो 'आत्मा' के सार तत्व को जानते हैं।

प्यारे पाठको ! इस को याद रक्खो ! जब कभी तुम तंग ख्याल बनकर भूल से अपनी उन्नति को रोकोगे, वहां ही दुख कष्ट पैदा होंगे। बढ़े चलो ! जो पग पड़े तुम को आगे उच्चतर अवसरों और श्रेष्ठतर स्थानों में पहुँचाए। यदि कोई कठिनाई राह में आती है उसकी चिन्ता न करो। यह कष्ट वास्तव में हमारी बुद्धि शक्ति की उन्नति करने में परम उपयोगी हैं। जहाँ कहीं रुकावट आए इसके कारण की खोज करो। यह केवल तुम्हारे उत्थान और जागृति के लिए प्रकृति की ओर से तुम्हारी राह में उपस्थित की जाती हैं। सोचने और विचारने से तुम को इन पर अधिकार मिल जायगा। प्रकृति में हर स्थान पर सुरक्षा का नियम साथ-साथ काम करता है। क्या तुम नहीं देखते जब किसी के घाव हो जाता है, उस घाव के भीतर ही आराम देने वाली शक्ति उभर खड़ी होती है और उसको भला और चंगा कर देती है। क्या तुम नहीं देखते कि आँख में जब कभी तिनका पड़ जाता है, कोई अन्तरी शक्ति या तो उसको अपने भीतर समाजाने का यत्न करती है या बाहर निकाल देती है। घाव के साथ मरहम, दुख के साथ सुख, कष्ट के साथ आराम, बन्धन के साथ मुक्ति, यह तुम को पग-पग पर मिलेंगे। यह कभी न सोचो कि हम दवा के आधीन हैं। दवा केवल हमारे

स्वास्थ्य के लिए सहायक का काम करती है। यह कभी न कहो कि हमको कोई व्यक्ति अधिकार और सुख दे सकता है। यह सब कुछ हमारे अन्दर है और हमारा अपना है। परमात्मा के पुत्रो ! तनिक अपनी आत्म-सत्ता का भी विचार करो। तुम साहस हो, शान्ति हो, शक्ति हो। भ्रम और संशय की भीत को तोड़ फोड़ डालो। जहाँ यह गिरी तुम अपने निजी तेज के साथ चमक उठोगे और तुम जिस शक्ति, जिस मान बड़ाई, और प्रतिष्ठा की पूजा या सेवा का दम भरते थे वह स्वयं तुम में प्रकट हो जायगी।

न देखा वह कहीं जलवा, जो देखा मन के अन्दर में।
बहुत मसजिद में सिर मारा, बहुत पूजा की मन्दिर में ।।

आओ इस गूढ रहस्य की समस्या की ओर शांति से विचार करें!

आत्मा के ऊपर कोष चढ़े हुए हैं। इनका उतारना जरूरी है। जब एक कोष के उतारने का समय आयेगा, बेचैनी चिन्ता और विषाद होगा। बिना इसके कुछ न होगा। यदि यह न हो फिर परिश्रम कोई क्यों करे। बिना हाथ पैर मारे कभी किसी के कुछ हाथ नहीं आता। आलस्य को छोड़ो ! जिसकी धुन लगी हो उसी ओर हो जाओ ! दाँये बाँये मुड़कर न देखो ओर सफलता और विजय पाँव चूमेगी।

इतिहास क्या कहता है? जिन जातियों ने बल और पराक्रम के साथ परिश्रम किया, वह उन्नति के शिखर पर चढ़कर सूर्य के समान चमक उठीं। जो जाति सुख चैन ही को अपना लक्ष्य बनाकर दुख व कष्ट के नाम से घबराती रहीं, प्रकृति के चूमने वाले चक्र ने उनको निर्दयता के साथ पीस डाला। तुम अब तक जीवित हो। इसका कारण केवल यह है कि तुम कष्ट और विषाद से घृणा करते हो और जीवन के हर दृष्टि कोण में जिधर घुस जाते हो उधर ही आश्चर्य जनक दृश्य दिखा देते हो।

आत्मा में निराशा नहीं है। आत्मा आशा है। इसका विचार अन्धेरे में प्रकाश का काम देता है। आशा को अपना इष्ट बना-कर बदी से भिड़ जाओ और उसको नेकी के रूप में बदल डालो। पुण्य पाप केवल उपेक्षिक शब्द हैं। उनको अपने आधीन कर लेना केवल तुम्हारे पुरषार्थ पर निर्भर है। डरो नहीं। आत्मा के लिए कहीं भी डर नहीं है। शस्त्र इसको काट नहीं सकते। आग इसको जला नहीं सकती। पानी इसको भिगो नहीं सकता। वायु इसको सुखा नहीं सकती। भग० गीता अ० २ श्लोक २३। फिर किसका भय है ?

दुनियां की और जाति यदि कष्ट से घबराती हों तो उनको घबराने दो। तुम न घबराओ। राम ने अकेले केवल अपने भुज बल से रावण का सामना करना चाहा। प्रकृति ने स्वयं उनका साथ दिया और वह विजयी हुए। यदि तुम आंख रखते हो तो सब जगह घर बाहर तुमको राम के सच्चे विजयी होने के दृश्य खुले रूप में दिखाई देंगे। बुद्ध देव अकेले ही बदी को नेकी से दबाने चले। दुनिया ने उनका लोहा माना। यदि तुम कान रखते हो तो संसार में अब तक भी तुमको उनकी विजय का डंका बजता हुआ सुनाई पड़ेगा। क्या इन पर कष्ट नहीं आये ? पर हमारे पूज्य पूर्वजों ने बेपरवाही से उनका स्वागत किया। संसार में हमारी जाति का भी कुछ लक्ष्य (मिशन) है। हमको संसार के सुखों का उत्तराधिकार नहीं मिला, कष्टों से सामना करते आए हैं ताकि उसकी छाती पर पाँव रखकर लोगों को दिखादें कि हम इस तरह विजय पाते हैं। तुम कभी राजा महा-राजा, धनी, रईसों की संतान होने का गर्व न करो क्योंकि हममें से हर एक हिंदू ऋषि कुलकी संतान है। हमारे गोत्र ऋषियों से हैं। हम पूज्य साधुओं की संतान हैं, जो शारीरिक सुख चैन और भोग विलास को सदा अस्वीकार करते रहे।

हमको भी अपने पूर्वजों के पथ पर चलना है। संसारी जीवन हमारा इष्ट नहीं है। रूसी और यूनानियों ने इसी को सब कुछ समझा, मर मिटे। जो इसका सब कुछ समझते हैं मर मिटेंगे। यदि तुम भी ऋषियों की संतान होने का विचार छोड़कर इसी को सब कुछ समझोगे, मर मिटोगे।

हम अब तक संसार में जीवित हैं। इसका कारण यह है कि हमारी जाति का दुनिया में कुछ निश्चित उद्देश्य है और वह उद्देश्य यह है कि हम अपने मन, कर्म, बचन, चलन, सभ्यता आदि से सिद्ध कर दिखायें कि हम आत्मा हैं जो अनादि अविनाशी, अचल, सर्व व्यापक अमर है और जिसको सुख दुख आदि लेषमात्र भी छू नहीं सकते।

आओ जो कुछ दुख दर्द सिर पर आवें उनका साहस और धैयपूर्वक सामना करें और उनको अपने पैरों तले सीढ़ी बनाकर ऊपर की ओर उन्नति के शिखर पर चढ़ जाँय और अपने पूर्वजों के समान संसार को शिक्षा देने के अधिकारी बनें। तुम्हारा उत्तराधिकार, जन्म सिद्ध अधिकार है जिसको कोई तुमसे छीन नहीं सकता।

यदि अपने दोषों पर विचार करना सीख लें तो उपरोक्त उत्तराधिकार प्राप्त करने में देर न लगेगी।

अपनी और निहारिए, औरन सों क्या काम।
सकल कामना त्याग कर, भजिए गुरु का नाम॥

जब मनुष्य अपनी बुराइयों पर दृष्टि रखने लगता है तो उनका अनुभव हो जाता है और दोषों की जड़ कटना शुरू हो जाती है और वह अपने सुधार में लग जाता है। अपने दोषों का ज्ञान होते ही वह धीरे-धीरे उनको छोड़ने लगता है। जो अपने अवगुण विचारते रहते हैं वह भविष्य में दूसरों के दोष नहीं देखते। प्रेम व प्यार का व्यवहार करने लगते हैं और उन

के सुधार में बाधा नहीं होतीं। जब अपने दोष देखते-देखते स्वभाव बन जाता है तो मन का बर्तन खाली होने लगता है और बुरे विचारों की जगह अच्छे विचार ले लेते हैं। वह बुरे से अच्छा हो जाता है और वह दिन प्रति दिन उनके निकालने के उपाय सोचता है। इसलिए मन कर्म और बचन से गुण ग्राही बनना आवश्वक है। दोष यदि देखोगे दोषी बन जाओगे। एक दिन अपने दोषों को देखते-देखते ऐसे बन जाओगे कि तुम में दोष नाम को भी न रहेंगे। जहाँ इस विचार में घनापन आया नहीं कि तुम को ईश्वर भक्त बनते देर न लगेगी। आप तरोगे और दूसरों का भी भला कर सकोगे। मालिक करे! हम सब अपने अवगुण खोज कर निकालने के प्रयत्न में लग जांय, जो ईश्वरी सहायता दौड़ी चली आवे।

॥ बन्दता ॥

सहज में भव पार करदो, नाव है मंझधार में।
है तुम्हारे हाथ रक्षा, हूं दुखी संसार में॥
शब्द साखी क्या सुनू, मैं सुनते-सुनते थक गया।
मुझको जीता अब न समझो, जीते जी मैं मर गया॥
तुमने मेरी बाँह पकड़ी, अब तुम्हीं को लाज है।
सर्व समरथ दाता सतगुरु, तुमसे अटका काज है॥

॥ इति ॥

राघव प्रेस के लिए दयाल प्रिंटिंग प्रेस, लेखराजनगर, अलीगढ़।